रास्ते में

[illegible]

रास्ते में

लेखक की रचनाएं

१. कोले दियां लीकरां (कहानियां)

२. शानो (डोगरी का प्रथम उपन्यास)

३. अस भाग जगाने आले आं (एकांकी)
(एकादमी से प्रथम पुरस्कार प्राप्त तथा कश्मीर विश्व-विद्यालय के पाठ्यक्रम में स्वीकृत)

४. रोचक कहानियां

५. रास्ते में (कहानियां)

६. काम्पती देह डूबता दिल (कहानियां)

७. सात एकांकी

८. रास्ता कान्टे और हाथ
(एकादमी पुरस्कृत नाटक)

९. हाए, वे दिन
(सस्मरण तथा रेखा चित्र 'प्रेस में')

रास्ते में

(कहानियां)

नरेन्द्र खजूरिया

प्रकाशक—

मल्होत्रा ब्रादर्स

पक्का डंगा, जम्मू (तवी)।

रास्ते में

कहानियां

लेखक : नरेन्द्र खजूरिया

प्रकाशक : मल्होत्रा ब्रादर्स, पक्का डंगा जम्मू।

प्रथम संस्करण : एक हज़ार

कवर : देव दास

कम्पोजिंग : द्वारिका नाथ शर्मा

मुद्रक : अमर आर्ट प्रेस, जम्मू।

मूल्य : तीन रुपये पच्चास न.पै.

पूज्य भ्राता

श्री रामनाथ शास्त्री

जी को समर्पित

कहानियां

योग-खण्डित

जेठ महीने की एक दोपहर।

मैं भूख और गर्मी से बेहाल आफिस से लौट रहा था। अपनी गली की नुकड़ में पहुंचा तो कानों में किसी स्त्री के दहाड़े मार-मार कर रोने की आवाज़ सुनाई दी। चाहे, अपनी उम्र भी रोते ही बीती है। फिर भी किसी को रोते सुन कर दिल टूट जाता है। मेरी चाल मद्धिम पड़ गई। मन किसी अज्ञात शंका में डूबने लगा। रोने की आवाज़ हमारे घर की ओर से ही आ रही थी। बिजली के खम्भे के पास खड़ा हो कर मैं यह निर्णय करने लगा कि यह कौन दुखिया रो रही है : घर में तो केवल पत्नी ही थी। वे बिला नागा, प्रति दिन हमारे सिरहाने बैठ कर रो लेती थीं। उन का स्वर अपना जाना-पहचाना है। यह उन की आवाज़ नहीं थी। फिर हमारे होते-जीते भला उन्हें रोने की क्या ज़रूरत थी। वैसे भी वे पंचम स्वर में तो कभी नहीं रोती थीं।

सहसा, सैन्ती बुआ मेरे समीप आ कर खड़ी हो गई। इस से पहले कि मैं उन से कुछ पूछूं, वे फूट पड़ी—"निन्दो ! तुम यहां खड़े क्या कर रहे हो ?" जल्दी घर जाओ। कमला की मां मर गई।"

मुझे लगा किसी ने बिजली के खम्भे पर पत्थर दे मारा हो और उस की गूंज मेरे शरीर से हुई हो।

कमला मेरी पत्नी का नाम है।

घर पहुंचा। मोहल्ले भर की औरतें वहां जमा थीं। उन्हीं के बीच में से पत्नी की दहाड़े मार-मार कर रोने और छाती कूटने की आवाजें आ रही थीं।

भारी कदमों से सीढ़ियां चढ़ कर मैं अपने कमरे में जा बैठा। अपनी सास की इस आकस्मिक मृत्यु ने मेरी देह को निढाल कर दिया था। सचमुच ही वे बड़ी दयालू और दूरदर्शी महिला थीं। उन्होंने अपनी बेटी अर्थात् मेरी पत्नी के नाम अपनी सारी जायदात पहले ही लिख दी थी। यदि उस समय उन्होंने वसीयत न की होती तो आज उन के निकट सम्बन्धी कई झंझट खड़े करते।

सहसा सैन्ती बुआ ने कमरे में पदार्पण किया। वे कमर पर हाथ रखे, कुछ इस अंदाज से मुझे घूर-घूर कर देखने लगीं जैसे अपनी सास की मृत्यु की जिम्मेदारी मुझ पर ही हो। "निन्दो! यह समय पंखा खोल कर बैठने का नहीं। तुम्हारे ये मुए पंखे तो बांहें पसारे घूमते ही रहेंगे। जाने वाली बिचारी चली गई।" अपनी अश्रुरहित आंखें चादर से पोंछते हुए वे बोलीं—'कमला ने रो-रो कर क्या हालत कर रखी है और तू आ कर मजे से पंखे के नीचे बैठ गया। बेटा! सास रोज-रोज नहीं मरती। लोकाचार के लिये ही दो-एक दहाड़ें तुम्हें भी मार देनी थीं।

मैंने कहा—"बुआ! मेरी दहाड़ें सुन कर क्या वे लौट आएंगी?"

बिना कोई उत्तर दिए बुआ तेजी से मुड़ कर कमरे से बाहर चली गई।

सिवाए चाची जैन्ती के हमारा सारा मोहल्ला बुआ सैन्ती से डरता

है। परन्तु इस समय मैं इन दोनों से भयभीत था। ऐसे 'सुअवसर' पर इन के हाथों में 'फुल कमाण्ड' होती है। मैंने झट पंखा बन्द किया और नीचे दरी पर, सिर थाम के बैठ गया।

थोड़ी देर में बुआ सैन्ती और चाची जैन्ती मेरी टोह में वहां आ पहुंची। चाची जैन्ती ने पहले बन्द पंखे को देखा, फिर मुझ से मुखातिब हुईं—"निन्दो बेटा! सब जानते हैं कि मां जिस की मरी है उस की मरी है। जो घाटा सो उसे। पर, वह तेरी भी तो कुछ लगती थी। उस का भी तुम्हारे सिवा अपना कौन था?"

अब बुआ सैन्ती की बारी थी—"अपने कुत्ते-बिल्ली के मरने पर लोग 'छम-छम' रोते हैं। वह तो तेरी सास थी।...मेरी मां मरी तो मोहन के पिता ने छै महीने एक जून खाना खाया था। मुझे देख, उन की आंखों से 'छम-छम' आंसू बहते। कहते, 'सैन्ती! तेरा इस संसार में कोई अपना न रहा।" इस बार बुआ की आंखों से सचमुच के आंसू बह निकले। जिन्हें उस ने पोंछा नहीं। फिर मेरी शुष्क आंखों की ओर देखते हुए वह चाची जैन्ती से बोली—"बहना! ये आंसू ऐसे नहीं बहते। दुःख जब हड्डियों में जा कर रचता है तब कहीं इन पानी के चिरागों में जोत जलती है।"

चाची जैन्ती ने मेरे सिर को सहलाते हुए कहा—"बेटा! लोग क्या कहेंगे। मरने वाली की आत्मा क्या सोचेगी? कमला क्या कहेगी? तेरी मां मरी थी तो रो-रो कर कमला का गला बैठ गया था। लेकिन बलिहारी जाऊं उस के, गर्म पानी के कुल्ले कर-करके बराबर तेरह दिन तक रोती रही थी।" चाची ने एक निश्वास लेकर फिर कहना शुरू किया—"करनी भगवान की देखो। आज उस की

मां मरी, तो इस घर में उस के लिये रोने वाला भी कोई नहीं। यह कोई बसते घर के लच्छन हैं ?" चाची ने मेरी आंखों पर अपने हाथ की पट्टी रखते हुए, बड़ी कोमलता से कहा—"शाबाश ! मेरा अच्छा बेटा ! मेरे कहने पर केवल दो आंसू। देख मैंने तुझे बचपन में गोद खेलाया है। रोते को हंसाया है। अब मेरे कहने पर केवल ··· ।"

चाची अब मेरे सिर को ऐसे धीरे-धीरे सहला रही थी जैसे झाड़-फूंक कर रही हो जिस से मेरी आंखों से अपने आप आंसुओं की झड़ी लग जानी हो।

मैंने बड़ी आजिज़ी से कहा—"मुझ से यह सब न होगा। मुझे शर्म लगती है।"

बुआ सैन्ती, जिसे डर था कि कहीं मैं चाची जैन्ती के कहने पर सचमुच ही न रो दूं, गुस्से में बोली—"छोड़, जैन्ती ! भला इस ने क्या रोना, जो अपनी सगी मां के लिये नहीं रोया था। आ, नीचे चलें, कमला भी चुप हो गई लगती है।"

मगर चाची जैन्ती इतनी जल्दी हार मानने वालों में न थी, बोली—"मैंने बड़ों-बड़ों को खून के आंसू रुलाया है। भला यह रोये तो रोये क्यों नहीं ? सास मरी है, कोई मखौल नहीं।"

नीचे अब मेरी पत्नी रो नहीं रही थी वरन् रोने के बहाने मुझे ताने सुना रही थी—"हाय मेरी अम्मा ! तेरे मरने का किसी को कोई दुःख नहीं। जिन को तू ने चूरियां दीं। आज उन की आंखें पत्थर की हो गई हैं।"

मुझे लगा कि चाहे मेरा रोना मेरी सास के लिये जरूरी न हो मगर मेरे अपने लिये यह बहुत ही जरूरी है। नहीं तो सारी उम्र के लिये रोना पड़ेगा।

बुआ सन्ती और चाची जैन्ती अभी तक मेरी ओर ऐसे निहार रही थीं, जैसे पनिहारियां बन्द नल की ओर देखती हैं। मैंने उन से दोनों हाथ जोड़ प्रार्थना की—"आप के सामने रोते मुझे शर्म आती है। आप नीचे जाएं। मैं रोने का प्रयत्न करता हूं।"

बुआ को जैसे किसी ने उबार लिया। खुश हो कर बोली—"जीते रहो! भगवान तुझे···"

मगर चाची ने उन की बात काट कर कहा—"मगर दहाड़ों की आवाज़ आस-पास के चार घरों तक सुनाई दे।"

मैंने अर्ज़ किया—"अपनी ओर से मुझे पूरी कोशिश करनी है। अब चार घरों में कोई सुने न सुने इस में मेरा क्या दोष?"

वे दोनों नीचे चली गईं।

नीचे पांच छः औरतों की मिली-जुली आवाज़ सुनाई दी—"मान गया?"

चाची बड़े गर्व से कह रही थी—"हां, भला मानता कैसे नहीं?"

इस खुशी में मेरी पत्नी ने एक ज़ोर की दहाड़ मारी—"हाए ओ मेरी अम्मा ऽऽऽऽ···!"

हालांकि इस समय उसे 'अम्मा' शब्द के स्थान पर मेरा नाम लेना चाहिये था।

बुआ पत्नी को समझा रही थी—"अब तू जरा दम ले ले। ऊपर निन्दो भी..."

अब मेरी हालत का अंदाजा आप उस स्टेज के अभिनेता से बखूबी लगा सकते हैं, जिसे स्टेज पर पांव रखते ही अपना सारा पार्ट भूल जाये। घबराहट के मारे मैं कमरे में चक्कर काट रहा था। रोने के लिए एक दो बार मैंने अपना पूरा मुंह खोला। ठीक वैसा ही हुआ प्रायः जैसे सिनेमा स्क्रीन पर होता है और दर्शक चिल्लाते हैं—'आवाज़' 'आवाज़'। मैंने लाख यत्न किये मगर भूखे पेट से कोई आवाज न निकली।

नीचे बुआ सैन्ती कह रही थी—"नहीं, नहीं, वह बड़ा बेशर्म है। उस की आँखों में आंसू कहां?"

चाची जैंती मेरी पत्नी को कह रही थी—"जा, तू खुद जा। उसे रुलाने का ढंग तुझे ही आता है।"

सुन कर मुझे ठण्डा पसीना आ गया। मारे डर के जितना मुंह खुल सकता था, खोल दिया और जल्दी-जल्दी कमरे के और तेज चक्कर काटना शुरू कर दिया। सहसा दीवार से टंगे भोंपू पर दृष्टि पड़ी। चुनाव के दिनों का वह वहीं टंगा था। उसे मैंने ऐसी हसरत भरी नज़रों से देखा जैसे कोई डूबता हुआ व्यक्ति किनारे की ओर देखता है।

भोंपू को मुंह से लगा कर मैंने एक जोर की फूंक मारी। पड़ोसियों का कुत्ता इस बेसुरी आवाज को सुन कर चौंक पड़ा, और मुंह ऊपर उठा कर—जोर-जोर से रोने लगा।

नीचे चाची जैन्ती खुश हो कर सब को कह रही थी—"सुना ! कितनी दर्दनाक दहाड़ मारी है ।"

मेरी पत्नी ने अपनी छाती कूट कर कहा—"हाय ! यह तो वे भोंपू बजा रहे हैं ।" यही बात उस ने अपनी स्वर्गीय अम्मा को भी कही—"अम्मा ! तेरे मरने की खुशी में इस घर में भोंपू बज रहे हैं ।"

मैंने झटपट भोंपू को यथा स्थान रख दिया और सिर पर हाथ धर कर ज़ोर-ज़ोर की 'असली' दहाड़ें मारने लगा ।

जब बुआ सैन्ती, चाची जैन्ती और मेरी पत्नी कमला ऊपर पहुंची तो मैं बेहोश पड़ा था ।

पानी के छींटों से उन्होंने मुझे प्रकृतिस्थ किया । धीरे-धीरे आंखें उठा कर मैंने उन की ओर देखा । सहसा एक चीख मेरे मुंह से और निकल गई । इस से पहले कि मैं एक बार पुनः बेहोश हो जाता, चाची जैन्ती ने बड़े दुलार से डांटते हुए फर्माया—"बस, बस, बहुत हो चुका । अब जल्दी से ससुराल जाने की तैयारी करो । तुम लोगों के पहुँचने पर ही दाह-संस्कार होना है ।"

मैंने तौलिया भिगो कर सिर पर रखा और गांव जाने को तैयार हो गया ।

उस तपती दोपहर को छः कोस का पैदल सफर, उस पर पत्नी का बेसुरा क्रन्दन । आधे रास्ते तक वह लगातार रोती रही । जब उस का गला बुरी तरह बैठ गया और रोने की बजाए उस से बड़ी भयंकर ध्वनियां निकलना शुरू हुईं तो उस ने चुप्पी साधी । अब, रास्ते में जब कोई घर या दूकान आती, वहां वह अपने मन के दुःख को प्रकट कर लेती ।

एक स्थान पर, एक दुकानदार, अपनी दुकान पर बड़ी मीठी नींद सो रहा था। पत्नी के रोने से हड़बड़ा कर जाग पड़ा और मेरे पास आ कर पूछने लगा—"यह बिचारी क्या विधवा हो गई है? मैंने कहा—"नहीं, अभी नहीं।"

थके-मांदे शाम को हम ससुराल पहुँचे। सामने गली से सिर पर घड़ा उठाए, मुस्कराती हुई, मेरी सास जी आ रही थीं।

"अम्मा ऽ···ऽ···ऽ!" पत्नी ने एक चीख मारी और अपनी अम्मा से लिपट गई।

पानी से भरा घड़ा 'धड़ाम्' से नीचे आ गिरा।

अब हंस-हंस कर वे अपनी बेटी को सुना रही थी—"···तो पुरोहित जी ने यह समाचार शहर भी पहुँचा दिया।···परसों एक मुई छिपकली मुझ पर आ गिरी। पुरोहित जी ने इसे मृत्यु-योग बताया। ···और उसे ही खण्डित करने के लिए यह बात फैलाई···।"

मेरा मन हुआ इस 'योग खण्डित' की खुशी में धहाड़े मार-मार कर रोऊं।

फूल बने अंगारे

टैक्सी पर बैठा मैं सोच रहा था, कि किस उम्र में परीक्षा देने जा रहा हूं। परीक्षा की घबराहट से अधिक शर्म लग रही थी। रह-रह कर मुझे हलीमा पर क्रोध आ रहा था। नाहक उसने मुझे इस झंझने में डाल दिया।

परीक्षा भवन के सामने टैक्सी से उतरा। कई अजनबी नजरों के पंछी मुझ पर आ बैठे। दवात हाथ में थी। उसे फौरन जेब में डाल दिया। बड़ी कोफ्त हुई। जल्दी से सिगरेट सुलगाई। उस वातावरण में इस से कई तमाशबीन बढ़े। सिगरेट मसल डाली। आगे-पीछे देखा, पर कोई जानी-पहचानी सूरत न दिखाई दी। दीवार पर 'सीट-प्लैन' टंगा हुआ था। जा कर अपनी सीट ढूंढने लगा। रूमाल के लिए जेब में हाथ डाला। कुछ गीला-गीला लगा। दवात का ढक्कन ढीला रह जाने से पूरी जेब रंग गई थी। साथ खड़ा एक लड़का बोल पड़ा—"साहब, इम्तिहान के दिन कपड़ों पर इंक का गिरना बड़ा शुभ शकुन होता है।"

मैं बुरी तरह घबरा गया था। घड़ी देखी। हाल खुलने में अभी पचीस मिनट शेष थे। मैं जा कर कालिज के गोल पार्क की एक बेंच पर बैठ गया।

सोलह बरस बाद मैंने कालिज में कदम रखा था। कितना कुछ

बदल गया है। आज यहां परीक्षा-भवन खड़ा है। ठीक इसी जगह पर पार्क था। ये वेलें जिन से उर्दू-विभाग के सामने की दीवार ढक गई है, उन दिनों इनका नाम-निशान भी न था। कालेज के चारों ओर पक्की सड़क का यह घेरा भी नहीं था। केवल एक पक्की सड़क आफिस तक जाती थी। सब कुछ बदल गया। पढ़ने-पढ़ाने वालों के साथ-साथ कालेज का नाम भी बदल गया।

मैं उन दिनों सकंड इयर में था।

एक दिन सायकिल-सटेण्ड के पास एक फौजी मोटर-सायकिल खड़ी थी। हम कुछ सहपाठी उधर से गुजरे। आगे बढ़ कर, मैंने मोटर के कल पुर्जों से छेड़-खानी शुरू कर दी। 'फिट-फिट' करके वह कांपने लगी। सहपाठी नौ-दो ग्यारह हो गए। मैंने उसे संभालने की पूरी कोशिश की। पर वह तो ऐसे रूठी, कि जमीन पर लोट-पोट होने लगी। मैं अभी यह फैसला नहीं कर सका था, कि मुझे अब क्या करना चाहिए। तभी एक भारी-भरकम हाथ मेरी गर्दन से चिपट गया। मैंने अपने कन्धे सिकोड़ कर बड़ी कठिनाई से आंख के कोने से देखा—एक फौजी सिक्ख हाथों में चमड़े के दस्ताने पहने गुस्से से कांप रहा था।

मैंने सहमे हुए कहा—'सरदार जी, आप पहले मोटर-सायकिल सम्भालिये। ऐसा न हो कि कहीं पेट्रोल की टंकी में आग लग जाय।'

सरदार जी ने मेरा सुझाव मान लिया। मुझे छोड़ वे सायकिल उठाने लगे और मैं वहां से भाग कर कैनटीन में चला गया।

हलीमा को यह सब न जाने कहां से मालूम हो गया। घर पहुंचा तो अम्मी उबल पड़ीं। ''हम से न सही, मगर, भई, खुदा से तो खौफ़

खाया करो। कहीं वह मुई सायकिल ऊपर ही गिर पड़ती, तो? उसका ड्राइवर एक फौजी, उस पर सिक्ख। दो-चार धौल ही जमा देता तो?'

बूट के तस्मे ढीले करते हुए, मैंने कहा—'अम्मी जान, यह हलीमा की बच्ची कालेज में तो भीगी कबूतरी बनी रहती है, और आपको कालेज की एक-एक बात का आंखों-देखा हाल ऐसे सुनाती है, जैसे—'

हलीमा ने मेरी बात काट कर मुस्कराते हुए, शान्त स्वर में कहा—'मैं तो भीगी कबूतरी हूं। मगर आप इतने बहादुर होते, तो भीगी बिल्ली की तरह भागते नहीं। नहीं तो······'

'तो क्या होता?'

'प्रिन्सिपल साहब केवल एक अदद लोकल पोस्ट-कार्ड फूफा जी के पास भेज देते', हलीमा ने धीमे-धीमे मुस्कराते हुए कहा।

'फिर—फिर क्या होता?'

'वही जो बिना इजाज़त स्यालकोट जाने पर हुआ था।'

'अब्बा की वर्दी का लिहाज़ करता हूं। क्या कभी सिविल कपड़े पहने उन्होंने मुझे पीटा है?'

अम्मी जान और हलीमा ठहाका मार कर हंस पड़ीं।

हलीमा हमारे मामू जान की इकलौती बेटी है। मिडिल तक अपने गांव में पढ़ने के बाद वह हमारे यहां रह कर पढ़ रही थी। यदि हलीमा की पढ़ाई के हिसाब से देखा जाये, तो यह साफ है कि हम लड़के पढ़ते नहीं, और चाहे लाख कलाबाजियां खाते हों। बरस भर एक प्रोफेसर मुझे घर पर पढ़ाते रहे, पर मैं एफ० ए० पास न हो सका।

नतीजा सुनने के बाद मुंह छिपाने के लिए उस दिन मैंने लगातार सिनेमा के तीन शो देखे। आधी रात को घर पहुँचा। सारे घर में कुहराम मचा हुआ था। नौकर और अर्दली ढूंढ-ढूंढ कर थक चुके थे। अस्पताल से ले कर थाने तक फोन हो चुका था। चाचा जान स्यालकोट पता लगाने गए हुए थे। अब्बा जान भी आज बारह बजे ही क्लब से लौट आए थे। जब मेरे आने की खबर पहुँचाई गई, तो वे अपने कमरे से ही गर्जे—''उस नालायक को इधर भेजो।'

अम्मी और हलीमा मुझे ढारस बन्धाती अब्बा के कमरे की ओर धकेल रही थीं। मैं मन ही मन पीर के मज़ार पर मिन्नतें मानता एक-एक पग उठा रहा था। दरवाज़े के पास पहुंच कर, वे दोनों खड़ी हो गईं और मुझे अन्दर धकेलने लगीं। मैंने अम्मी के पांव और हलीमा की ठोड़ी छू कर अर्ज की—'खुदा के लिए, मुझे अकेला न छोड़िये।'

अम्मी ने आंखों में आँसू भर कर, अपनी मजबूरी प्रकट कर दी। मैंने हलीमा की ओर देखा। उस ने सिर हिला कर हामी भरी, और थोड़ी सी आटोमेटिक खाँसी खाँस कर, और मेरी बाँह थाम कर ऐसे अन्दर चली गई, जैसे वह मुझे स्कूल छोड़ने जा रही हो।

कमरा धुयें से भरा हुआ था। अब्बा वर्दी पहने, सोफे पर अधलेटे सिगार पी रहे थे। मुझे देख कर बोले—'मैं चाहता था कि तुम्हें विलायत भेजता। पर तुम्हें तो काले साहबों के तलुए चाटने हैं। ठीक है। चाटो।' उन्होंने सिगार को बूट के तले से मसल डाला।

मैं चुपचाप जा कर चारपाई पर औंधा लेट गया। मेरे कारण अब्बा को कितना दुःख हुआ था। बूट के तले से सिगार बुझाते जो

चिंगारियां कालीन पर गिरी थीं, लगता था कि वे उनकी आंखों से गिर रही हैं। अब कितने ही दिन अब्बा किसी से भी न बोलेंगे।

किसी ने खट से स्विच आन किया। कमरे में प्रकाश-भर गया। मैंने धीरे-धीरे आंख उठा कर देखा—हलीमा अभी तक अपनी दो उंगलियां स्विच पर रखे, मूक, निरीह-सी खड़ी थी। मुझे इस समय उस की उपस्थिति बड़ी अखरी।

'हलीमा, मुझे अकेला छोड़ दो।'

'पहले आप चल कर खाना खा लें।'

'नहीं। मुझे भूख नहीं है।'

'क्यों नहीं है ?'

'भूख नहीं है, इतना कहने से क्या काम नहीं चलेगा ?'

'नहीं इतना कहने से काम नहीं चलेगा। अभी तक किसी ने भी खाना नहीं खाया है।'—हलीमा ने बड़ी कोमलता से कहा।

'नहीं खाया, तो अब खा लो। मेरी तबीयत ठीक नहीं है।'—कह कर, मैंने करवट बदल ली।

हलीमा आ कर मेरी चारपाई की पटिया पर बैठ गई। "फेल होने का यह मतलब थोड़े ही है कि आपको कुछ आता-जाता नहीं, या आप नालायक हैं। आजकल लड़कों को नोटस रटने के सिवा क्या आता है ? आप में तो कमाल की कामनसेंस है। मैं दावे से कहती हूं, यदि आप केवल एक बार कोर्स देख लें, तो मजे में पास हो जायें।'

मुझे पहली बार महसूस हुआ कि हलीमा बड़ी समझदार है। मैं

लापरवाह हूँ, मगर नालायक नहीं। यह राय आज पहली बार किसी ने दी थी। मन चाह रहा था, कि हलीमा बोलती जाए। आज उस की वाणी में संसार का मधुरतम संगीत बह रहा था। मुझे लगा कि मैं सख्त भूखा हूं। हलीमा अभी वैसे ही बैठी हुई थी। मैंने कहा—'हलीमा अम्मी के सामने जाते मुझे शर्म लगती है। तू मेरा खाना यहीं भिजवा दे।'

'बहुत अच्छा', कह कर वह धीरे से उठ कर बाहर चली गई। दिल चाह रहा था, कि खाना ले कर हलीमा खुद ही आए .... ।

दूसरे बरस हलीमा की प्रेरणा और साहचर्य से पास हो गया। अब हम दोनों थर्ड इयर में थे। मगर बी० ए० में किसी तरह पास न हो सका। हलीमा बी० ए० करके अपने गांव जा रही थी। मामू जान उसे लेने आए हुए थे। छै बरस के अर्से में यह कभी ध्यान भी नहीं आया, कि हलीमा केवल बी० ए० तक ही हमारे घर में रहेगी। मुझे लगा, जैसे कोई अनहोनी बात हो गई हो।

दूसरे दिन सवेरे उसे जाना था। शाम को वह मेरे कमरे में आई। 'यह लीजिये अपना पेन।'

मैं ठगा-सा रह गया। 'पेन तुम अपने पास ही रख लो।'

हलीमा ने गरदन उठाई, और शान्त स्वर में बोली—'क्यों? आप इस बार इम्तिहान नही दे रहे हैं?'

'मैंने आंखें झुका कर कहा—'नहीं। अब न दूंगा।'

'नहीं, नहीं। आप इम्तिहान जरूर दें। मैं दावे से कहती हूं, कि—'

"यही न कि मैं नालायक नहीं, लापरवाह हूं ?" मैंने हंसते हुए कहा—"हलीमा, अब मुझ से नहीं पढ़ा जाएगा। पहली बार मैंने रात को बारह-बारह बजे तक पढ़ा है—सिर्फ तुम्हारे कमरे की रोशनी को देख कर, उस से हौंसला पा कर। मगर अब उस कमरे में शाम को भी अंधेरा ही रहेगा। कोई उस में अपनी कोमल उंगलियों से खट् करके स्विच आन नहीं करेगा। किसे पढ़ते देख कर मुझ अब पढ़ने की प्रेरणा मिलेगी ?···हलीमा, अब मुझ से कुछ भी नहीं होगा। केवल तुम याद आओगी, और कुछ भी नहीं।"

मैंने अपनी भीगी पलकें उठा कर, हलीमा की ओर देखा। आज सचमुच ही वह भीगी कबूतरी बनी हुई थी।

सुबह मैं और अम्मी जान उन्हें विदा करने स्टेशन तक गये। गाड़ी छूटने में अभी आधा घण्टा बाकी था। हम टिनशेड में एक ओर खड़े थे। हलीमा सुबक-सुबक कर रो रही थी। अम्मी उस के सिर को सहलाते हुए कह रही थी—"पगली, तू तो ऐसे रो रही है, जैसे हम से सदा के लिए बिछुड़ रही है। थोड़े दिन बाद जफर खुद जा कर तुझे ले आएगा।"

मगर हलीमा की सुबकियां बन्द न हुई।

मामू जान ने उसे दुलार से डांटते हुए कहा—"क्या बी० ए० पास लड़कियां भी रोया करती हैं ?" फिर उन्होंने मेरी ओर मुंह करके पूछा—"क्यों, मियां जफर, तुम ने किसी बी० ए० पास लड़की को इस तरह रोते देखा है ?"

मैंने जवाब देने के बजाय उनकी ओर ऐसे देखा, जैसे कोई बच्चा

अपना खिलौना छीनने वाले की ओर देखता है। मामू जान ने घूर कर एक वार मेरी ओर देखा, और फिर अम्मी को ले कर टिनशेड की दूसरी ओर चले गये।

मैंने स्टाल से कुछ पत्रिकाएं खरीद कर हलीमा को देते हुए कहा—'मैं कुछ दिन बाद आऊंगा। उमीद है कि अम्मी इजाजत के लिये अब्बा जान से सिफारिश कर देंगी।'

हलीमा के मुंह पर हंसी बिखर गई। 'आप अपनी स्टडी का ध्यान रखें।'

स्टेशन से लौटते समय अम्मी जान मेरी ओर वार-वार देख रही थीं, जैसे मैं एक मुदत के बाद विदेश से लौट रहा होऊं।

'तू इस साल इम्तिहान में नहीं बैठेगा?'

'नहीं।'

'तब तुझे अपने बाप-दादा की तरह पुलीस की बर्दी पहन लेनी चाहिए।'

और फिर एक दिन वर्दी पहन कर मैंने बूट से बूट बजा कर खड़ाक से सलाम किया अम्मी जान को।

अम्मी ने मेरी बलायें लेते हुए कहा—'पढ़ने में न सही, देखने में मेरा बेटा अव्वल पास है। इसी लिए भाई जान ने हलीमा के लिए—'

मैं एटेन्शन खड़ा था। लगा, जैसे मुझे किसी ने अपनी बांहों में भर लिया हो। एबाउट-टर्न हो कर, मैं सीधे हलीमा वाले कमरे में चला आया। मेरे चारों ओर फूल ही फूल खिल गये। मुझे लगा जैसे

हलीमा मुझे धीरे-धीरे बुला रही है, 'आओ, बैठ कर इतमीनान से सोचें। होने-जीने की बातें करें। तुम्हारी स्टडी कैसी चल रही है ?'

मैंने अलमारी से हलीमा की रफ नोट्स बुक निकाल ली। बस, यही एक कापी अब इस कमरे में उसकी अन्तिम निशानी थी। नोट-बुक में कहीं भी उसने अपना नाम नहीं लिखा था। केवल सुन्दर-सुन्दर अक्षर थे। हलीमा जैसे लिखती नहीं थी, कसीदा काढ़ती थी। मैं कापी को मुंह के सामने रख कर, ऐसे बुदबुदाने लगा, जैसे वह कापी नहीं फोन का चोंगा हो, और उस में कहे जाने वाला प्रत्येक शब्द ज़िला स्यालकोट के एक गांव के कोठे की मुंडेर पर खड़ी हलीमा सुन रही हो।

इसके बाद समय का चक्कर कुछ इस तरह चला, कि फूलों की सुगन्ध बदबू में बदल गई। हवाओं में ज़हर घुल गया। गर्म-गर्म लहू की इतने ज़ोर की वर्षा हुई, कि धरती की कोख में बड़ी-बड़ी दरारें पड़ गईं और बीच में एक लम्बी चौड़ी खाई पड़ गई, जिसके इस पार हिन्दुस्तान, और उस पार पाकिस्तान।

मामू जान की चिठियां आतीं। सन्देश पहुंचते। बुलावे आते। मगर अब्बा अपनी जन्मभूमि, घर-जायदाद बड़ी-बड़ी नौकरियां और यश-मान त्याग कर केवल शरणार्थी बनने के लिए पाकिस्तान जाना केवल मूर्खता और खोखली भावुकता मानते थे।

धीरे-धीरे मामू जान के पास से खतों का आना बन्द हो गया। सहसा एक दिन हमें हलीमा के ब्याह का दावत-नामा मिला। कोई मजीद खां साहब थे, जिन से हलीमा का निकाह होना तै पाया था।

मेरी उमीदों के फूल अंगारे बन गए। मुझे लगा कि मैं जैसे अकेला किसी वीराने में खड़ा हूं। मेरे चारों ओर कौए कायं-कायं करते मंडरा रहे हों, और मुझे नोच रहे हों।

यह कहानी यहीं पर समाप्त हो जाती है। लेकिन इसे आप न सुन पाते, यदि दस बरस के बाद एक और घटना न घटती। अम्मी की मौत पर हलीमा का मातमी खत आया। जाने के बाद यह पहला खत उस ने लिखा था। जीवन तथा मृत्यु के फलसफे के गूढ़ उदाहरण दे-दे कर उस मुझे ढारस बंधाने का प्रयत्न किया था। चिट्ठी के अन्त में लिखा था : 'उमीद है, कि आप ने बी० ए० कर लिया होगा। यदि नहीं तो अदीब फाज़िल द्वारा ही कर लें। अदीब फाज़िल तो आपके लिए कुछ कठिन नहीं ......।

मैंने घड़ी देखी। परीक्षा-भवन खुलने में केवल पांच मिनट शेष थे। मुझे लगा, जैसे मैं सोलह बरसों से इसी बैंच पर बैठा हुआ हूं।

दो गुड़ियां

खील···छोले···ए··ए।

खील छोले की आवाज़ सुन कर, घर के बच्चे खुशी से झूम उठे। इस आवाज़ की चिर-प्रतीक्षा में वह थक गये थे।

उन्होंने सभी तैयारी कर रखी थी। पुरानी पतंगों के रंग-बिरंगे कागज़ों को इकठा करके प्यारू ने झंडियां बना डाली थीं। माली से चोरी, सत्या ने केले के पत्ते ला कर रख दिए थे। पाशो दीदी की नाले बुनने की तीलियों से चणु ने 'वेदी' खड़ी कर दी थी। दहेज का छोटा-मोटा सामान सुहागु ने पहले से ही इकठा कर रखा था। बैसाखी के मेले से खरीदा हुआ बीन-बाजा प्यारू ने इसी दिन के लिये सम्भाल कर रखा था। बस, एक 'सालू' की ही कसर थी; वह भी पाशो दीदी की मिन्नत खुशामद से पूरी हो गई।

एक पंक्ति में बच्चे मां से पैसे लेने के लिए चल पड़े। सब से आगे सहमी सकुचाई सुहागु, उसके पीछे डरती-डरती सत्या और दोनों बहनों की ओट में धीरे-धीरे पग बढ़ा रहे थे दोनों भाई-प्यारू और चणु।

वे दबे दबे पांव ठाकुरों वाले कमरे की दहलीज के पास जा कर खड़े हो गये। ठाकुर जी की मूर्ति के समक्ष मां, आंखें बन्द किए, हाथ जोड़े बैठी थी। बच्चे चुप-चाप एकटक मां की ओर देखते रहे। मां की बन्द आंखों से अश्रुधारा बह निकली और होंठ कांप उठे······"ठाकुर जी ! मुझे पाशो के बोझ से मुक्त करो। उसकी मांग में सिंदूर भरो।

घर की अवस्था तुम से छिपी नहीं। आज प्रकाश के साथ पाशो की सगाई की बात पक्की हो जाए···मैं तुम्हारे······।"

सहसा मां की नज़र बच्चों पर पड़ी।

सुहागु ने थोड़ा आगे सरक कर, धीरे से कहा—"मां जी! ···एक आना···खील छोले···।"

मां की उंगलियां शालिग्राम की मूर्तियों की चौकी पर कुछ ढूंढती रहीं। शायद कहीं ठाकुर जी के निमित्त पड़ा हुआ कोई पैसा···पर उंगलियों के पोर केवल धूप की राख ही टटोलते रहे। "···बेटी, ···आना···।" मां की आंखें सजल हो उठीं। धोती के कोर से आंखें पोंछते हुए उन की उंगलियां, दूसरे छोर में बन्धे, मन्दिर के नैवेद्य से छू गईं। काम्पती उंगलियों से उन्होंने उसे खोला। गीली और फूली हुई किशमिश के पांच-सात दानों पर आठ आंखें गढ़ गईं। चारों बच्चों की हथेलियों पर मां ने दो-दो दाने रख दिये।

बच्चे चुपचाप लौट गए।

मां सोच रही थी—आज सुहागु की गुड़िया की शादी है कितने दिनों से बच्चे, इस काम में व्यस्त हैं।···मगर बरातियों को खील-छोले खिलाने के लिये एक आने की सामर्थ्य इस उजड़ी-दीन गृहस्थी में नहीं है। महीने के आखिरी दिन हैं। बानवे रुपये के क्लर्क की गृहस्थी! मकान का किराया और आटा-दाल जुटाना भी कठिन है। साग-सब्जी खरीदने की तौफीक भी नहीं है। इस लिए चार दिन से घर में केवल नमक-हल्दी मिले पीले चावल पक रहे हैं।

खील छोले वाले की कर्कश-आवाज़ अभी उसके कानों में शीशा घोल

रही थीं। सुबह के मुर्ग की बांगों की तरह बार-बार उठती खील-छोले ···खील-छोले की कर्कश ध्वनि ! मां को लगा कोई उसे चिढ़ा रहा है, उसको सारी गृहस्थी से व्यंग्य कर रहा है। मां के माथे पर बल पड़ गए। ग्रावाज़ें लगातार ग्रा रही थीं, पर ग्रब उन कर्कश ग्रावाज़ों में मां को एक मार्मिकता ग्रनुभव होने लगी। उसे लगा ये ग्रावाज़ें उसे नहीं रोटी को बुला रही हैं। रोटी, जो सभी ताल नचाती है। इन ग्रावाज़ों की सुखद ग्राशा में कोई गृहिणी सब्ज़ी की, कोई सुहागु गुड़िया के विवाह के लिए खील छोलों की प्रतीक्षा में बैठी होगी ग्रौर कोई पाशो······।

पाशो का ध्यान ग्राते ही मां को ग्रपने मन पर एक भारी बोझ-सा ग्रनुभव हुग्रा। इस बोझ के नीचे उस की गृहस्थी दबी जा रही है। यद्यपि, पाशो के रूप में उसे ग्रपने यौवन की बीस वर्ष पुरानी ग्राकृति का प्रतिरूप दिखाई देता था, पर ग्रब यह सौंदर्य उसे कांटे की तरह चुभ रहा था। इस सुन्दर रूप की तपन से जैसे वह जली जा रही थी। कितनी जगह पाशो के रिश्ते के लिये हाथ-पैर मारे, पर कहीं पहुँच न हो सकी।

ग्राज प्रात: फिर पाशो के बापू दही चख कर, प्रकाश के पिता के पास, पाशो के रिश्ते के लिए गये हैं। प्रकाश के पिता उन के सहपाठी रहे थे। इसी वर्ष प्रकाश ने वकालत पास की थी। बचपन में वह इन के पास पढ़ने के लिए ग्राता था। ग्रब भी वह इन की गुरु की भांति ही मान-मर्यादा रखता है।

एक दिन मुझे कहने लगा—"चाची ! पाशो बस प्रभाकर पास

करके बैठ गई है। एक दो अंग्रेजी के इम्तिहान भी दे दिये होते। मैं आज कल फुर्सत में हूं। एक-आध घड़ी, आ कर पढ़ा जाया करूंगा।"

"बेटा, पाशो ने अब क्या पढ़ना ? बस, अब यही पढ़ाई है, कि कहीं अपने घर जाए। पर कोई वर ही…।"

"चाची, पाशो जैसी लड़की के लिये वरों की क्या कमी ? हंस कर प्रकाश ने कहा था।

पाशो आज खुशी से फूली नहीं समा रही है। झर-झर झरते झरने की भान्ति खुशी में गुनगुनाती वह एक नए स्वस्थ उत्साह से काम में जुटी हुई है।

"प्रभु ! पाशो की खुशियों का तू ही रखवाला है।" मां ने पुनः आंखें बन्द कर ली और ठाकुर जी के आगे हाथ जोड़ दिए।

रसोई की खिड़की से मिलते नीम के पेड़ की छाया में सुहागु की गुड़िया के विवाह की धूम-धाम से तैयारियां हो रही थीं। सुहागु दूसरे बच्चों को काम-काज सौंप रही थी। खील-छोले परोसने के लिये माञ्जे हुए ढक्कनों में पिसा हुआ ईंट-चूना सजा हुआ था। सौ स्नेह चावों से गुड़िया को लाल कपड़ों में लपेट कर, एक सजाये हुए कोने में बैठा दिया गया था। नीम की झूलती टहनियों के साथ-साथ कागजी झण्डियां भी झूल रही थीं।

"दीदी !" खिड़की से झांक कर सुहागु ने कहा—"मेरी गुड़िया का विवाह नित-रोज नहीं होना। तुम्हें कितनी बार कहा सुहाग-गीतों की रौनक छेड़ो।"

चावल बीनती पाशो केवल मुस्करा दी।

"दीदी ! विवाह-शादी वाला घर गीत-सुहागों के बिना सूना-सून। लग रहा है। बारात के आने का समय हो रहा है। मैं काम-काज में लगी हुई हूं, फिर अपनी गुड़िया के विवाह में, मैं स्वयं गाती भली भी तो नहीं लगती।" कहते-कहते सुहागु की सांस फूल गई और मुंह पर लालिया छा गई।

पाशो इस बार भी केवल मुस्करा दी।

"दीदी" ! चिढ़ कर सुहागु ने कहा—'यह काम-काज आती जाती छाया है। कल तुम्हारे विवाह पर, मेरी भी ज़रूरत पड़नी है।"

पाशो सुर्ख रंग में रंग गई—"तू देख नहीं रही सुहागु, में चूल्हे-चौके के काम में लगी हूं।"

"तब क्या हुआ ?" ठुनक कर सुहागु ने खुशामद की, "यहीं बैठे-बैठे चार बोल कह दो न, दीदी।"

माथे पर झूलती लट को धीरे से कान पर टांक कर पाशो ने इधर-उधर देख कर स्वर उठाया—

इनें महलें दे विच-बिच वे,
बाबल, डोला नहीं लन्गदा।
दो इट्टां पटाई सुटगे,
धिए, घर जा अपने।
इने बागें दे विच-बिच वे,
बाबल डोला नहीं लन्गदा।
दो टाले वढाई सुटगे,
धिए, घर जा अपने।

[बावल ! इन महलों के बीच से (मेरी) डोली नहीं जा सकती। बेटी दो ईटें उखाड़ देंगे, तुम अपने घर जाओ। बावल ! इन उपवनों के बीच से मेरी डोली नहीं जा सकती। बेटी ! दो डाल कटवा देंगे। तुम अपने घर जाओ।]

गाते-गाते पाशो की और सुनते-सुनते सुहागु की आंखें सजल हो उठीं।

मां को आता देख पाशो ने आंसू निचोड़ लिये।

बाहिर चगु का बीन-बाजा गूंज उठा।

"बारात आ गई।"

"जल्दी करो।"

"मिलनी के लिए चलो।"

अपनी-अपनी जगह सभी जल्दी में थे। मिलनी हुई। "कैहल" के स्थान पर चगु के बीन-बाजे की स्वर-लहरियां गूंज उठीं। "क्या कहा ? बरातियों के खाने के लिए कुछ भी नहीं ? गुड्डी वाली लड़की ने आंखें तरेर कर सिंह-गर्जना की।

सभी बरातियों में एक गुल-गपाड़ा आरम्भ हो गया।

मां, जो रसोई की खिड़की से यह सब कुछ देख रही थी, उसे लगा कि रसोई धुयें से भर गई है और पाशो उस में डूब रही है। पाशो की सुखद आशाओं के फूलों की सुगन्ध कड़वे धुयें में घुल-मिल रही है।

"यह दहेज है ?" मेरे गुड्डे का विवाह रोज-रोज नहीं होना। मुझे यह विवाह मन्जूर नहीं।" गुड्डे वाली लड़की ज़ोर-ज़ोर मे हाथ नचा कर कह रही थी।

बिन बरसे बादलों की तरह बराती चले गये। नन्हें प्यासे पौदों की भान्ति मुंह बाए देखते रह गये, सुहागु, सत्या, प्यारू व चणु।

रसोई से पकते चावलों की गुड़गुड़हाट के साथ पाशो की सिसकियां वायु को कम्पा रही थीं। मां शायद अपने इष्टदेव के पास चली गई थी।

नीम की कोमल कोंपलें मन्द समीर में कभी ऊपर कभी नीचे निश्वास ले रही थीं। झण्डियां रह-रह कर काम्प रही थीं और इस काम्पती छाया में मुर्झाई हुई सुहागु कभी दहेज को, और कभी 'सालू' में घूंघट निकाले, एक ओर लुढ़की गुड़िया को देख रही थी।

"सुहागु! मरने दे इन को, हमारी इतनी सुन्दर गुड़िया है। हम कोई दूसरा गुड्डा ढूंढ लेंगे। जो दहेज और खाने का नहीं, हमारी गुड़िया के रूप-गुण का भूखा होगा।" चणु ने बहन को ढारस दिया।

गली के मोड़ पर, गर्दन झुकाये बापू को आते देख, बच्चों ने झटपट सामान इकट्ठा किया और अन्दर भाग आए।

आंगन से गुजरते बापू को मां ने सहमी-सकुचाई आशा भरी आंखों से देखा। बापू ने केवल गर्दन को और नीचा कर लिया।

ओसारे में सुहागु की, और ठाकुरों वाले कमरे में पाशो की सिसकियां सुनाई दे रही थीं।

असफल आदमी

मास्टर गौरीदत्त नज़र झुकाये; हांफते हुए वेग से भीड़ चीरते चले जा रहे थे। सहसा पीछे से मास्टर रविकान्त ने उन्हें पुकारते हुए कहा—"भाई ! क्या टॉप-गेयर लगा कर चलते हो ? कहां से तुम्हारे पीछे-पीछे भागा चला आ रहा हूँ।"

मास्टर गौरीदत्त ने उसी वेग से चलते हुए कहा—"रास्ते में घड़ी देखी, सिर्फ पांच मिनट बाकी थे। आगे दो दिन से 'लेट' लग रही है। 'कैजुयल' भी एक दिन की ही रह गई है।"

—"भई ! हैडमास्टर स मेल रखा करो। बे-वसीला आदमी ठहरे; ऐसे कब तक अकड़ते रहोगे ?" रविकान्त ने अपनापन दिखाते हुए कहा। सुनते ही गौरीदत्त के मुंह का स्वाद कड़वा हो गया। कैसा बगुला-भक्त बनता है। सारा दिन हैडमास्टर की जूतियां चाटता फिरता है, स्टाफ-भर की चुगली करके अब वसीले वाला बनता है। "बे-वसीला ज़रूर हूँ, पर बे-गैरत नहीं। आज वसीला दूसरे का हक छीनने का साधन है। जो बेईमानी है, अपने कर्त्तव्य से कृतघ्नता है। मुझ से यह नहीं होगा।" बिना रविकान्त की ओर दृष्टि उठाये गौरीदत्त ने कह डाला।

रविकान्त ने कटाक्ष का लक्ष्य अपनी ओर देख झुंझला कर कहा—"इसी हेकड़ी पर उम्र भर घर से बाहर भटकते रहे हो।

तुम एक असफल आदमी हो। कहते हो खुशामन्द नहीं करूंगा। पर खुशामन्द तो आज जीवन के पग-पग पर है। कहां-कहां नहीं करोगे ? दस-पन्द्रह रुपये की ट्यूशन के लिए हाथ पांव मारना तुम्हारी दृष्टि में खुशामन्द नहीं है ? लड़की को पाल-पोस, पढ़ा-लिखा कर गली-गली उस के लिए वर ढूंढने को आप क्या कहेंगे ?"

मास्टर गौरीदत्त निरुत्तर हो गए।

स्कूल में भी रविकान्त की बातें उन के मस्तिष्क पर हथौड़े की भान्ति बार करती रहीं।

......जीवन के पग-पग पर खुशामन्द है......खुशामन्द का ही दूसरा नाम जमानासाजी है। रविकान्त ने उन के मन के दुखते तार छेड़ दिये थे। उन्हें सायंकाल की घटना याद आई। वह ट्यूशन पढ़ाने गये थे। सामने घर की स्वामिनी खड़ी थी। एक शिक्षित, सभ्य और सम्पन्न महिला। उन्होंने हाथ जोड़ 'नमस्ते' कही। महिला ने सिर को थोड़ा-सा आगे को हिला कर उपेक्षित भाव से दृष्टि घुमा कर पुकारा—"काका जी ! नीचे आओ, मास्टर आया है।"

एक और हथौड़े का वार हुआ—गली-गली वर ढूंढने को आप क्या कहेंगे ? उन का ध्यान अपनी बेटी की ओर गया—जो अब उनके सामने आती शर्माती है। उसी के लिए उन्होंने गांव का शांत वातावरण छोड़ा था। पांचवीं कक्षा तक पढ़ा लिखा कर, बेटी घर के काम काज में मां का हाथ बटाने लगी, पर जब पांचवी पास लड़की का मूल्य 'विवाह मण्डी' में पड़ा तो उनका स्वप्न टूटा।

अब उन की लड़की प्रभाकर पास है। सिलाई आदि सीख चुकी है पर, वर...वह तो गली-गली ढूंढने पर भी नहीं मिलता।

छुटी घण्टी में मास्टर गौरीदत्त छटी श्रेणी को इतिहास पढ़ा रहे थे—सिकन्दर का हमला। एक कहानी के ढंग से वह कहे जा रहे थे। लड़के तन्मय हो कर सुन रहे थे। इतने में हैडमास्टर साहब ने श्रेणी में पदार्पण किया।

"क्या पढ़ाया जा रहा है?"

"इतिहास—सिकन्दर का आक्रमण।"

हैडमास्टर साहब ने इधर-उधर दृष्टि घुमा कर कहा—इस वातावरण में लड़के सिकन्दर का हमला क्या समझेंगे? उसके लिए एक ऐसा एटमास्फियर प्रस्तुत होना चाहिए कि लड़कों को ऐसा लगे, मानो उनके सामने सिकन्दर और पोरु की सेनाएं खड़ी हैं।

अचानक एक लड़का खड़ा हो कर बोला—"सर! जिस ढंग से मास्टर जी पढ़ा रहे हैं, उस से हमें बखूबी समझ आ रही है।"

"बदतमीज! तुम्हें किसने बोलने को कहा था? बाहर आओ।"

लड़का सहमा हुआ बाहर आया। आते ही हैडमास्टर थप्पड़ों और घूंसों से उस पर पिल पड़े। लड़का लड़खड़ा जाता, सम्भल कर फिर सीधा खड़ा हो जाता। वह न तो क्षमा मांग रहा था और न रो रहा था। मुंह बचाने के लिए न बाहों को आगे करता। हैडमास्टर इस से और चिढ़ गये। सभी लड़के डर से सहम गये थे, मानो हैडमास्टर जी ने सिकन्दर और पोरु के युद्ध का यथार्थ एटमास्फियर प्रस्तुत कर दिया हो। मास्टर गौरीदत्त कभी आंखें खोलते और कभी मीचते शायद आंसू रोक रहे हों।

इस भयानक वातावरण में—जिसे मनुष्य जन्म देता है—आकस्मिक

एक सूक्ष्म मार्मिक और असहाय 'आह' शब्द की ध्वनि सुनाई दी, जैसे जोर के आंधी झक्कड़ में किसी सुकोमल फूल के टूटने की आवाज हो। जिस ने अपने अल्प घेरे की वायु को कम्पित कर दिया। मास्टर गोरीदत्त बेकाबू हो कर लड़के से जा चिमटे।

"आप लड़कों को गुस्ताख बना रहे हैं," हैडमास्टर साहब के मुंह से अस्पष्ट शब्द निकल रहे थे—"मैं देखता हूं, आप उन में गलत रंग भरते हैं।"

मास्टर गोरीदत्त की आंखों से आंसू वह रहे थे और अब वह लड़का भी उन से चिमटा सिसक रहा था।

हैडमास्टर साहब कहते जा रहे थे—"आप के वर्ताव से लड़के उछृंखल हो रहे हैं। दूसरे अध्यापकों ने भी मेरे पास इस आशय की शिकायतें की हैं।"

मास्टर गोरीदत्त ने अंग्रेजी में कहा—"आप को मेरे विषय में जो आपत्तियां हैं। उन्हें आफिस में बुला कर भी कहा जा सकता है। मैं नहीं समझता लड़कों की उपस्थिति में यदि आप मुझ पर अभियोग लगायें, तो भविष्य में यह मेरे प्रति क्या श्रद्धा रखेंगे और जिस की श्रद्धा नहीं उस पर विश्वास कैसे होगा?"

हैडमास्टर साहब ने भी अंग्रेजी में उत्तर दिया—"श्रद्धा और विश्वास पुस्तकों और भाषणों के विषय हैं, और स्कूल में इन का क्या प्रयोग होता है, मैं नहीं समझता। घर में एक-आध बच्चों से उन के माता-पिता झुंझला उठते हैं। आखिर हम इतने लड़कों को बिना डर और दण्ड के कैसे रख सकते हैं।"

"यह केवल पुस्तकों तथा भाषणों के विषय नहीं हैं। मैंने बीस वर्षों में इन पर कामयाब तजरुबा किया है। मैं पूरे विश्वास और जिम्मेदारी से कह सकता हूं कि विद्यार्थी पर क्रोध करना एवं सज़ा देना हिंसा है, पूर्णरूप से हिंसा"......मास्टर गौरीदत्त के मुंह पर तेज टपक रहा था।

इस घटना के पश्चात् हैडमास्टर साहब मास्टर गौरीदत्त पर बड़े कोपित रहते। हो सकता है मास्टर रविकान्त ने भी उस दिन की बातें उन्हें सुना दी हों। उस का तो यह काम है। दूसरे के हृदय से किस तरह बातें निकाली जाती हैं और उन्हें कैसे निमक-मिर्च लगा ठिकाने पहुंचाया जाता है! इस कला में वह बड़ा निपुण है।

मास्टर गौरीदत्त जिन दिनों इस स्कूल में नए-नए आये थे। एक दिन हैडमास्टर ने उन्हें आफिस में बुला कर कहा—"देखता हूँ, आप का अंग्रेजी व इतिहास पढ़ाने का ढंग अपना ही हे। आज के नये कालिजों से निकले हुए मास्टर क्योंकर आप का मुकाबिला करेंगे?" फिर कहा—"हमारी बेटी दसवी में पढ़ती है। अंग्रेजी व इतिहास तो उसे काटने को दौड़ते हैं। मैं तो समझा-समझा कर थक गया हूँ। अब तो वह मुझ से पढ़ती भी नहीं। उस ने तथा उस की मां ने अब यही समझ लिया है कि मुझे ही पढ़ाना नहीं आता।" हो...हो...हो हंसते हुए हैडमास्टर साहब ने कहा—"भई, होगा तो तुम्हें कष्ट ही पर एक-आध माह के लिए एक-आध घण्टा समय निकालना ही पड़ेगा।"

दो माह गौरीदत्त पढ़ाते रहे।

तभी उन की स्त्री को संग्रहणी रोग ने आ-दबोचा। घर का

बजट पहले ही घाटे में था उस पर इस रोग का बोझ। विवशता-वश उन्होंने हैडमास्टर के हां पढ़ाने जाना छोड़, एक ट्यूशन पकड़ी।

एक सप्ताह बाद उन्हें ग्राफिस में बुलाया गया।

—"मेरे नोटिस में ग्राया है कि ग्राप ट्यूशन करते हैं?" हैड-मास्टर ने तेवर बदलते हुए कहा।

—"जी, एक ट्यूशन ज़रूर करता हूं।"

—"ग्राप को उस के लिए ग्राज्ञा लेनी चाहिए थी। ऊपर से इस के लिए कड़ा नोटिस ग्राया है।"

मास्टर गौरीदत्त के मन में ग्राया कि पूछूं रविकान्त जैसे दूसरे मास्टर दस-दस ट्यूशनें करते हैं। उन्होंने किस से ग्राज्ञा ली है। पर मन की बात मन में ही रही। सभी ग्रपनी-ग्रपनी मजबूरी के लिए ग्रपना खून-सुखाते हैं। हैडमास्टर साहब ने ग्रपना निर्णय दिया—"ग्राप कल मुझे लिखित रूप में उत्तर दें।"

यही पहली घटना थी। इस के पश्चात् मास्टर गौरीदत्त से बात-बात पर लिखित रूप में उत्तर मांगे जाने लगे।

एक दिन स्कूल में 'पुग्रर फण्ड' से सहायतार्थ निर्धन लड़कों की सूचियां बनाई जा रही थीं। 'पुग्रर फण्ड' के इंचार्ज थे मास्टर रविकान्त। मास्टर गौरीदत्त की श्रेणी का एक निर्धन लड़का 'लेट' होने के कारण सूचि में न ग्रा सका था। उसे लेकर गौरीदत्त रविकान्त के पास गये। रविकान्त ने कहा—"लिस्टें हैडमास्टर साहिब के पास पहुंच गई हैं, ग्रतः ग्राप उन से मिलें।"

मास्टर गोरीदत्त लड़के को लेकर आफिस पहुँचे।

—"क्या आप इस लड़के की ट्यूशन करते हैं"—छूटते ही हैडमास्टर ने कहा। गोरीदत्त के तन पर सैंकड़ों सुईयां चुभ गईं। उन्होंने भी उसी भाव से पूछा—"क्या केवल उन्हीं लड़कों को सहायता दी जा रही है जिन की ट्यूशनें चलती हैं?"

—"मिस्टर गोरीदत्त, मैं देख रहा हूं, हर बात में टांग अड़ाना आप की आदत में शामिल हो गया है। आप उम्र में बड़े हैं इसी लिए मैंने जो न सहना था वह सहा"—हैडमास्टर साहब ने आगे कहा—"पर आप शायद इसे मेरी कमजोरी समझते रहे हैं। अब यह बात न होगी।"

पन्द्रह दिन के पश्चात् अपना ट्रांसफर-आर्डर देख, मास्टर गोरीदत्त की आंखों के आगे अंधेरा छा गया। रोगिनी स्त्री व विवाह की आयु को पार करती हुई बेटी की धुंधली तस्वीर उन के सामने से मिटने लगी। वह पास टिकी कुर्सी पर बैठ गये। पुनः आर्डर उठा कर देखा। सौ मील दूर पहाड़ी क्षेत्र के एक लोयर स्कूल में हैडमास्टर के पद पर उन्हें नियुक्त किया गया था।"

उन्होने आंखें उठाईं तो सामने हैडमास्टर की चश्मे से ढकी आंखों व होंठों पर एक व्यंग्यमय मुस्कान मानों उन्हें कह रही हो—"तुम्हारे आदर्श इस स्कूल के लिए नहीं, सौ मील दूर लोयर-स्कूल के लिए हैं।

पास की कुर्सी पर रविकान्त था, जैसे कह रहा हो—यह तो होना ही था, आखिर तुम गैरत वाले जो ठहरे।

दूसरे दिन इलविदाई पार्टी हुई। वह तो होनी ही थी। आखिर

हम सभ्य हैं और सभ्यता का तकाजा है कि जब हमारा कोई मित्र अथवा सहयोगी हम से बिछड़े तो हम उसे चाय-पार्टी दें।

पार्टियों में हल्के-फुल्के भाषण भी होते हैं। इस पार्टी में भी हैडमास्टर साहब ने एक हल्का-फुल्का भाषण दिया—"मेरे साथी श्री गौरीदत्त जी हमारे साथ बहुत थोड़ा अर्सा रहे। पर इस थोड़े अर्से में इन्होंने अपनी योग्यता तथा परिश्रम से स्कूल के स्टाफ व लड़कों के मन मोह लिए। यह एक सही मानों में उस्ताद हैं।"

गौरीदत्त सोच रहे थे—मनुष्य के कितने रूप हैं। मन और जीभ में कितना अन्तर है! हैडमास्टर ने अपने भाषण के अंत में कहा—"मुझे तथा मेरे स्टाफ को हार्दिक दुःख है कि हम एक योग्य साथी से वंचित हो रहे हैं। भगवान करे, ये जहां भी रहें खुश रहें, उन्नति करें"

मास्टर गौरीदत्त से भी कुछ कहने का अनुरोध किया गया। वह क्या बोलते। वह नहीं चाहते कि जाती बार अपने सहयोगियों की बाहरी सहानुभूति को रोष में बदल दें। वह आहिस्ता से उठे, हैडमास्टर की ओर दृष्टि घुमा कर देखा, जैसे कह रहे हो—"मैं क्या बोलूंगा? आप की तरह वाक्-चातुरी से तो मैं अनभिज्ञ हूं ही और मेरे मन में इतनी परतें भी कहां?"

पांवों की छांव

भागां विधवा हो गयी।

ब्याह हुए अभी सात साल हुए थे। अब विधवा की उमर सत्रह बरस थी। उसका डोम-खसम जमींदार-मालिक की घास-कटाई के लिए गया हुआ था, वहीं टीले से लुढ़क गया।

भागां अब अकेली थी।

दूसरे दिन प्रातः वह मालिक के आंगन में घूंघट निकाले बैठी थी। सामने खाट पर मालिक बैठे हुक्का पी रहे थे।

"अन्नदाता दिन-वार करने हैं"—भागां ने धीरे से कहा।

"हूँ," मालिक ने धुआं मुंह से बाहर निकालते हुए कहा, "तेरे खसम ने जो नामा अपने बाप की मृत्यु पर दिन-वार के वास्ते लिए था, वह अभी वैसे ही लिखा पड़ा है। खैर, तू किसी दूसरे डोम-डाम को देख ले—और कुछ नहीं तो पुत्र-पात्र ही हो जाएगा। तुझ, रांड को भला किस बूते पर खाते में चढ़ाया जा सकता है—ठीक है न ?"

"आप ठीक कहते हैं अन्नदाता।" धीमे स्वर में घूंघट से आवाज आई।

खाते पर भागां के अंगूठे की स्याही लगवाकर दस रुपये देते हुए मालिक ने कहा, "सब मिला कर सत्ताईस हुए, और ढोर-डंगार क्या

है तुम्हारे पास ? ब्याज साथ-साथ चुकता जाये तो ठीक रहता है, घास-लकड़ियों के गट्ठर-उट्ठर दे जाया कर—जा चिन्ता न कर सब ठीक हो जाएगा।"

"आप के पांवों की छांव है।" मालिक के सामने धरती पर माथा टेकते हुए भागा ने कहा।

झोंपड़े के साथ ही दो कनाल ज़मीन थी, और इसी कारण भागां के खसम का नामा काश्तकारी के कागज़-पत्रों में लिखा हुआ था।

मक्की की कटाई हो चुकी थी। गेहूं के लिए जमीनें तैयार की जा रही थीं। पहले इन दिनों भागां का खसम किसी से दिन भर के लिए हल-बैल मांग लाता था, परन्तु इस बार भागां फावड़ा लेकर स्वयं जुट गई। धूप से उस का मुंह तांबे की भान्ति हो गया था। काम में वह यों लगी थी, जैसे अपने रंडापे को गाड़ती-दाबती जा रही हो।

कमर सीधी करने के लिए उसने सिर ऊपर उठाया। सामने पेड़ पर उसका पड़ोसी सनीतू खड़ा मुस्करा रहा था। भागां भी सहज भाव से मुस्करा दी।

"भागां, फरेन्तू मरा है, मगर हम तो अभी जिन्दा हैं, तूने यह फावड़ा क्यों थाम लिया ?" एक गहरा श्वास लेते हुए सनीतू फिर बोला, "भागां तेरे कोमल हाथ इन कामों के लिए नहीं हैं।"

भागां चुपचाप फावड़ा चलाती रही।

सनीतू ने पास आकर कहा, "भागां तू रहने दे, मैं खुद यह सब कुछ कर दूंगा। चल तू छांव में बैठ, नहीं तो तेरी सोने की यह देह इस धूप की भटठी में झुलस जाएगी।"

दूसरे दिन प्रात: भागां के खेत में सनीतू हल चला रहा था। उस के पीछे भागां मिट्टी के बड़े-बड़े ढेलों को तलोट से तोड़ती जा रही थी। अपने छोटे-छोटे हाथों से तलोट को हवा में उठा कर ढेलों पर मारती तो खसर-खसर की ध्वनि होती और तलोट लहरा कर फिर भागां के कन्धे पर पहुंच जाता है। ढेलों को तलोट के एक ताल पर समतल करते हुए भागां यह भूल गई कि वह विधवा है, और उसका हलजोई साथी खसम नहीं, पड़ोसी सनीतू है। एकबारगी उस के होंठ, जिन की ताजगी और गुलाबी रंगत पर धूल की एक हल्की-सी परत जम गई थीं, कांप उठे, जैसे किसी पंछी ने पहली बार पंख खोले हों। किसी सूखी हुई बावड़ी में जैसे दुबारा जल फूटता है, उसी तरह उसके कण्ठ से बोल उबल पड़े—रस लेई गेया SS भौरा SS।

इस के उत्तर में 'हां, भई हां' कहने वाला अब उस का डोम कहां था, और सनीतू के कानों तक शायद यह बोल पहुँचे नहीं थे।

दो-चार घण्टों में काम समाप्त हो गया। सनीतू ने बैलों को अब सुहागे में जोत लिया।

"आ तू भी अपनी थकान हल्की कर ले" सनीतू ने भागां को पुकारा।

भागां ने कहा, "नहीं बैल बहुत थक गए हैं।"

छाती पर हाथ रख कर सनीतू चिल्लाया, 'मेरे बैल इत्ते काम से थक जाएं ? भागां, मुई कौड़ियों के मोल बेच दूं इन्हें—तेरी कसम।" यह कह कर सनीतू ने खींच कर भागां को सुहागे पर चढ़ा लिया। तभी कान पर हाथ धर कर सनीतू ने 'भाख' उठाई—

"पहाड़ी चन्ना पखरूआं, तेरे मिठड़े-मिठड़े बोल।"

भागां चुपचाप सुनती रही। सनीतू ने उस का कंधा दबा कर कहा, "मुई जवाब दे न !"

भागां फिर भी चुप रही।

"तुझे मेरी सौगन्ध" कह कर सनीतू ने फिर 'भाख' उठाई—

"पहाड़ी चन्ना पखरूआं, तेरे मिठड़े-मिठड़े बोल।"

भागां के होंठ कांप उठे। उस ने उत्तर में गुनगुनाया—

"अपनी बोली कियां बोलां, मारी लैंदे राजे लोक।"

काम समाप्त होने पर भागां ने सनीतू को खाने के लिए रोक लिया। नमक-मिर्च के साथ दोनों ने चिट्टी-मक्की की रोटियां खाईं। फिर रोज इसी प्रकार दोनों के सम्बन्ध बढ़ते चले गये। भागां तो वह नाव थी, जिस के लिए कोई भी किनारा घाट था।

●

भागां ने एक बच्चे को जन्म दिया—उस के सूने आंगन फूल खिला मगर दो-तीन दिनों से सनीतू ने इधर आना छोड़ दिया था। भागां के लिये अब वह जंगल का मोर बन गया था। अपने को वह भागां के बच्चे का बाप नहीं मानता था। भागां को उसके प्रति कोई गिला-शिकवा नहीं था। उसे कहीं सनीतू मिलता तो वह अब भी उससे यों सहज भाव से बातें करती, जैसे कुछ भी न हुआ हो। जैसे दोनों के बीच कोई अप्रिय घटना भी नहीं घटी। पीठ पर बच्चे को बांध भागां जंगल-झाड़ से लकड़ियां ला कर मालिक के डेरे की बेगार भी देती। बच्चे को लेकर, जब पहली बार भागां मालिक के घर पहुंची तो मालिक ने कहा, "चलो ठीक हुआ भागां। तेरे सिर का बोझ हल्का हो गया।"

धरती पर माथा टेकते हुए भागां ने कहा, "अन्नदाता, आप के पांवों की छांव में पल जाएगा।"

"हां, हां, बड़ा हो ले, हमारे यहां ही टिका रहेगा।" भागां को सांत्वना देते हुए मालिक ने कहा, "भागां कल घास की कटाई है, सबेरे जल्दी आ जाना।"

भागां के खेत की गरदावरी थी। पटवारी गरदावरी का एक रुपया लेता है। वह भला रुपया कहां से देती।

"मुन्शी जी, मुझ रांड के पास जहर चखने को भी पैसा नहीं।" भागां ने जैसे अपने को बेपर्दा करते हुए कहा।

पटवारी भागां से भी बेपर्दा निकला, "वाह ! बड़ी चतुर बनती हो ! जिन मुसटण्डों के जनती हो, क्या वे भी घर से लुट गये हैं ?"

"मुन्शी जी, जिन्होंने लाखों का लाल दिया, उन्होंने बाकी क्या रखा।" भागां ने अपने बेटे मुरकू के सिर को सहलाते हुए कहा।

"मैं यह सब नहीं जानता" हाथ नचाते हुए पटवारी ने कहा, "रुपया नहीं तो आठ गट्ठे बालन के घर छोड़ आना।"

"मैं ऊंचे चील के पेड़ों पर कैसे चढ़ पाऊंगी मुन्शी जी ?" भागां ने कहा।

"किसी यार से कहना, वह उतार देगा।" पटवारी ने चिल्ला कर कहा।

भागां ने फीकी हंसी हंसते हुए जवाब दिया, मुन्शी जी आप मखौल करते हैं। अच्छा मेरी बीरो गाय दूध देगी तो मैं आप को आठ दिन दूध पिला दूंगी।"

●

भागां का मुरकू दो वर्ष का हो गया। मां की पीठ ही अभी उसके लिए धरती थी। चलते-फिरते भागां उसे पीठ पर बांधे रखतीं। कभी जंगल से लौटते समय जब मुरकू मां की पीठ से बंधे हुए ऊब जाता तो कुछ क्षणों के लिए वह अपना मुंह आगे करके मां के मुंह की ओर देख लेता। तब सिर के बोझ को भूल कर भागां यों मुस्करा देती, जैसे उस के पास सभी कुछ है—सभी कुछ। उसे हंसते देख नन्हा मुरकू बनफशे के फूल की तरह हंस देता।

बीरो गाय को बछड़े वाली बने एक महीना हो गया था। इसी दिन की सुखद आशा से वह आज तक मुरकू को खाली छाती से ठगती आ रही थी। संध्या समय मालिक एक आदमी को साथ लेकर उसके झोंपड़े में आये। बैठने योग्य स्थान न देख, उन्होंने खड़े-खड़े ही कहा, "भागां ब्याज मूल को पार कर गया है, ऐसे कैसे चलेगा? तू हमारी पुरानी आसामी है, फिर अपने सिर के बोझ की चिन्ता तो करनी ही चाहिए।"

भागां की समझ में न आया क्या उत्तर दे।

कुछ पल रुक कर मालिक ने कहा, "महीना भर गाय का दूध तूने पी ही लिया है, अब मैं इसे बीस रुपए में ले जाता हूं।"

भागां को महसूस हुआ, उस की पीठ मुरकू के बोझ से खाली हो गई है।

मालिक की नजरें कुछ और भी इधर-उधर ढूंढ रही थीं पर भागां की गिरस्ती से और कोई चीज मिलनी मुश्किल हो गई।

"भागां ऐसे कैसे चलेगा ?" उसे चुप देख मालिक ने फिर कहा, "अच्छा तेरा मुरकू बड़ा हो ले तो हम इसे अपने पास ही रख लेंगे। तब तू भी निश्चित हो कर कहीं मजूरी-मजारी कर लेगी।"

"अन्नदाता, आप ही का आसरा है।" भागां ने रुंधे कण्ठ से कहा।

"मालिक का इशारा पाकर साथ आये आदमी ने खूंटे से गाय खोल ली। बछड़े को मालिक स्वयं खोलने लगे। गाय असमय अपरिचित व्यक्तियों द्वारा इस प्रकार खोले जाने पर रंभा पड़ी। जैसे वह भागां से विलग होने का आभास पा गई हो।

पल भर में भागां का आंगन सूना हो गया। वह विमूढ़-सी बैठी रही। उसके सामने वह छोटी सी हंडिया मुंह वाये पढ़ी थी, जिसे उसने आज ही दूध तपाने के लिए लिया था। देवी-देवताओं और पटवारी से निबट कर आज उसने मुरकू को गाय का दूध पिलाना चाहा था। दुःख का कोई कारण न समझते हुए भी उस की आंखों की कश्तियों में जल भर आया। भूखे मुरकू को खींच कर उसने अपनी सूखी छातियों से लगा लिया।

जिस दिन गांव में प्राइमरी स्कूल खुला, उस दिन वहां एक छोटा-सा उत्सव हुआ, जिस में भाग लेने को कस्बे से भी कुछ लोग शामिल हुए। एक आदमी ने कैंची से रेशमी धागा काटा। अन्य उपस्थित लोगों ने ज़ोर-ज़ोर से तालियां पीटीं। उसी आदमी ने बाद में भाषण देते हुए कहा, "शिक्षा ही हमारी उन्नति की नींव है। अब गांव-गांव में स्कूल खुल रहे हैं……।"

इस जलसे से निबट जमींदार-मालिक भागां के झोंपड़े में आये। अब उन्हें छोटे लड़के को स्कूल में दाखिल करना था, इस लिए ढोर-डंगरों की सम्हाल के लिए भागां के मूरकू पर नजर थी।

दस आने महीना और रोटी-कपड़ा की तनखाह निश्चित हुई जो ब्याज के हिसाब में कटती जाएगी। सब बातचीत पक्की करके चलते समय मालिक बोले, "भागां कल दिन भी शुभ है। सवेरे ही मुरकू को हमारे यहां पहुंचा देना।" फिर हंस कर बोले, "नौकरी यह क्या करेगा, अभी तो हमें ही इस की नौकरी करनी होगी।"

रात को भागां का झोंपड़ा अन्दर से बन्द था। लेखड़ियों के काले, कड़वे गंधयुक्त धुएं में बैठे हुए भागां और मुरकू बासी मक्की की रोटी खा रहे थे। एक ओर टूटी हुई खाट पड़ी थी, खाट क्या थी बिना ढक्कन से टूटे-फूटे सन्दूक-सी हो गई थी, फटे-पुराने लिहाफों में रूई के स्थान पर चिथड़े भरे हुए थे। इन लिहाफों पर खटमल यों चल-फिर रहे थे, जैसे अंधेरी तलहटी में सूअरों की बड़ी टोली कुछ सूंघती ढूंढती जा रही हो।

"मुरकू तू कल से अन्नदाता के पास नौकरी करेगा।" भागां ने यों कहा जैसे अपने आप से प्रश्न कर रही हो।

मुरकू ठुमक कर बोला, "आहा! तब तो बड़ा मजा आयेगा, खाने को कभी-कभी दाल भी मिल जाया करेगी।" बासी रोटी का कौर निगलते हुए उसने फिर कहा, "पर अम्मा तू?"

भागां ने जैसे अपनी बात का क्रम टूटने न दिया, "मगर तू वहां होश से अपना काम करना। बैठना भी हो तो हमेशा दूर कहीं नुक्कड़

में खाली जगह बैठा करना। किसी को भी देख कर 'पांव लागूं' जरूर कह देना—समझे बेटा? हम नीच लोग हैं। इन बड़े लोगों के पांवों की छांव में ही हमारा निर्वाह है।"

"पर अम्मा, हम नीच क्यों हैं?"

"इस लिए कि हम गरीब हैं।"

"हम गरीब क्यों हैं अम्मा?"

"ऐसी बातें नही करते बेटा, कहीं अन्नदाता के घर भी किसी से ऐसी बातें न कह देना।"

मुरकू ने ठुमककर कहा, "मैं नहीं करूंगा अन्नदाता की नोकरी—मैं तुम्हारे पास ही रहूँगा।"

भागां ने उसे छाती से लगा कर कहा, "नहीं, नहीं बेटा, हमारा मरना, जीना, दु:ख-सुख सब उन्ही के साथ है और फिर तू वहां अकेले थोड़े रहेगा, हमारी बीरो गाय भी तो वहीं है। तुम्हें बीरो का पता है न? जिसने एक छोटा-सा बछवा दिया था।"

मुरकू की आंखें-चमक उठीं, "हमारी बीरो वहीं है अम्मा? तब मैं दाल नहीं खाऊंगा। दूध पिऊंगा। दूध दाल से अच्छा होता है न?"

"नहीं, नहीं" भागां ने झट से कहा, "दाल अच्छी होती है दूध से, और दाल से भी अच्छी वह सूखी रोटी होती है, जिससे आंखों में रोशनी आ जाती है। तू वहां बीरो का दूध मत मांगना, नहीं तो बीरो का बछवा भूखा रह जाएगा। नहीं मांगेगा न?"

मुरकू उदास हो गया, उस ने सिर हिला कर 'ना' कर दी।

सुबह जल्दी ही भागां ने मुरकू को जगाया। उसके कन्धे पर फटी-पुरानी चादर रख दी, और रात की बची हुई आधी रोटी देते हुए उसे चलने को कहा। मुरकू बिना मर्जी चलने को तैयार हो गया। भागां ने उदास और सूनी-सूनी नजरों से अन्दर बाहर झांका, और फिर कस कर मुरकू को गोद में भर कर सुबकने लगी।

"बेटा, वीरो ने आंगन सूना किया था, पर आज बाहर-अन्दर सब सूना हो गया।"

मां के आंसू देख कर मुरकू भी रो पड़ा। बेटे को सांत्वना देते हुए भागां ने कहा, "बेटा, हमारा यही धर्म है। भगवान तुम्हें बड़ी उमर दे, और कुछ न सही ब्याज तो चुकता जाएगा।"

अपना मुरकू अन्नदाता को सौंप कर जब भागां लौटी तो उसे लगा, आज वह पुनः बेसहारा और विधवा हो गई है। टूटे हुए पेड़ की भांति वह खाट पर गिर पड़ी। खाट पर मुरकू के सोने का स्थान उसने खाली छोड़ दिया। अपनी छाती में मुरकू के निश्वासों की तपन उसे अनुभव हो रही थी। मुरकू का चेहरा भिन्न-भिन्न रूपों में मुस्करा जाता, हंस जाता और रूठ जाता। उसे अपने आस-पास, हर जगह मुरकू का आभास होने लगा। बाहर आंगन में उसे बीरो रंभाती सुनाई देने लगी। सहसा उसके मुंह से एक चीख निकली और वह मूर्छित हो गई। उसे लगा, वह किसी अज्ञात गहरे जल में डूब रही है। उसके समीप मुरकू डूब रहा है। उसके खसम की लाश तैर रही है। उसके पड़ोसी डूब-मर रहे हैं, चिल्ला रहे हैं। फिर उसे दिखाई दिया—पानी के ऊपर कई लोग उजले कपड़े पहने कश्तियों में सवार हैं। उनमें कुछ लोग हाथ हिला-हिला कर भाषण दे रहे हैं। उनके

भाषणों का कोई-कोई शब्द उसकी समझ में आता है—बचाओ, डूबने वालों को बचाओ! आज से कोई नहीं डूब सकता—पानी की छाती पर हमारा अधिकार है। लोग तालियां पीटते हैं—खुश होते हैं। डूबने वालों की ओर जाल फेंके जा रहे हैं। रस्से कम और जाल अधिक। पर वे रस्से और जाल किसी डूबने वाले तक नहीं पहुँच रहे हैं। उन जालों में से केवल मछलियां और सीपियां ही निकलीं। रस्सों द्वारा कश्तियां परस्पर निकट आ पहुंची। भागां जोर से चिल्लाई—तुम हमें बचाने आये थे, ये सीप-मोती क्यों झपटने में लग गये? हम बड़े नीचे में डूब रहे हैं। हमें पकड़ो, हमें बचाओ। पर यह सब ऊपर तैरने वालों ने सुना-अनसुना कर दिया। वह अपनी विजय पर नाच रहे थे। तालियां पीट रहे थे। उधर भागां की सांस उखड़ रही थी। मुरकू कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। भागां अपनी पूरी शक्ति से चिल्लाई—"मुरकू! मुरकू!! मुरकू!!!"

संध्या जब अंधेरे से बोझिल हो चुकी थी तब भागां की मूर्छा टूटी। उसकी सारी देह पसीने से भीग गई थी और देह पर खटमल रेंग रहे थे। कोशिश करने पर भी उससे उठा नहीं गया।

सवेरे बुखार से फुंकते हुए शरीर के साथ उठना मुश्किल हो रहा था। फिर भी सिर और कमर पर चादर बांध कर वह उठी, और मालिक के लिए घास के गट्ठर लाने जंगल की ओर चली गई। उससे चला नहीं जा रहा था, फिर भी धीरे-धीरे जैसे-तैसे वह आगे बढ़ती गई। शाम तक घास काटती रही और फिर बड़ा-सा गट्ठर बना कर उठा लाई।

अब रोज इसी तरह वह दिन को हठपूर्वक अपनी जीर्ण देह को

घिसटती रहती, और रात भर ज्वर में तड़पती रहती। थोड़े दिनों में ही वह भीतर-बाहर से बुझ गई। फिर भी वह मालिक के यहां बेगार देती रही, छोटी-मोटी मजूरी करती रही। किसी को भी उस की ओर देखने का समय नहीं था।

अब दिन को भी उसके लिए उठना मुश्किल हो गया। जब-तब मुरकू आकर उसके सिरहाने पानी का घड़ा भर कर छोड़ जाता। उस बेचारे के पास अब इतना समय ही नहीं था कि अम्मा को रोज देखने भर के लिए आ सकता। एक दिन वह आया तो पीछे रीछ मालिक की दो भेड़ों को उठा कर ले गया। उनकी कीमत मुरकू के नाम पड़ गयी।

भागां बेसुध पड़ी थी। इतने में वोटों का प्रचार करने वाले दो प्रचारक उसके झोंपड़े में आए। भागां को उनके आने का कारण समझ में नहीं आया, और न उनकी बातों का वह कोई अर्थ जान सकी। वह केवल इतना ही जान पाई कि उनमें एक मालिक का बड़ा लड़का है। प्रचारक कह रहा था—"आप देख रही हैं," यह इज्जत का सम्बोधन भागां को सारी उमर में पहली बार मिला—"कि गांव-गांव में स्कूल खुल रहे हैं। आप के बच्चों को मुफ्त पढ़ाया जा रहा है। गांव-गांव में पंचायत घर हैं, जहां बिना मोल के न्याय मिलता है। बेसहारा औरतों और बच्चों को नये-नये काम-धन्धे सिखाये जा रहे हैं।" प्रचारक रटे हुए शब्द फटाफट उगले जा रहा था "इन गांवों को हमें स्वर्ग बना देना है, इसके लिए हमें आप के सहयोग की आवश्यकता है। आप अपना वोट…।"

भागां एक शब्द भी न समझी। धीरे-धीरे उसने अपने हाथ उठा कर जोड़े और कहा, "अन्नदाता, मुझ से उठा नहीं जाता।"

प्रचारक ने तुरन्त कहा, "चिन्ता न करें, हम आप की खाट उठा कर ले जाएंगे, आप अपना वोट··· ।"

सवेरे दो वर्कर भागां के झोंपड़े में आये। तब तक भागां अपना वोट डाल चुकी थी। वोट हाथ से निकल गया था। वर्कर लौट गये।

दूसरे दिन अन्नदाता खाट पर बैठे हुक्का पी रहे थे। उनके ठीक सामने मुरकू बैठा था—"अन्नदाता, अम्मा के दिन-वार करने हैं। आप ही कुछ दें। आप ही का आसरा है। आप के पांवों की ही छांव है···।"

एक नई निराली दुनिया

कसबे से दूर ऊपर, पहाड़ों से घिरी हुई, एक छोटी सी घाटी है। इस में एक प्राइमरी स्कूल एक रेंजन-गार्ड-हट और एक टूटी-फूटी सराये है। शेष आबादी चारों ओर की पहाड़ियों में, कहीं-कहीं तितर-बदलियों भरे आकाश में, तारों की भान्ति बिखरी पड़ी है।

इस घाटी में आने वालों को सब से पहले दिन में धुंध व रात को चील के उदास स्वरों से परिचित होना पड़ता है।

मैं इस घाटी के स्कूल में नया-नया मास्टर बन कर आया था। दिन को स्कूल और रात को संराये में टिका रहता। सराये के एक टूटे-फूटे कमरे में मन्दिर था। जिस में एक भीमकाय काली मूर्ति स्थापित थी। जिस की धूप-पूजा के लिए एक बूढ़ा पण्डा साथ वाली कोठरी में पड़ा रहता। पण्डा केवल पूजा के समय ही, दूसरों की समझ में न आने वाली भाषा में उस मूर्ति से बोलता था। अन्यथा, किसी से बात चीत करते मैंने उसे कभी नहीं देखा।

उस दिन रविवार था। सराये के एक कमरे में मैं लेटा हुआ था। सारी घाटी धुंध से ढकी हुई थी। दरवाज़ों व खिड़कियों पर धुंध के पर्दे टंगे हुए थे। ऐसा लग रहा था, जैसे मैं 'लायका'[1] की भान्ति उपग्रह में बैठा, पृथ्वी से हज़ारों कोस दूर उड़ा जा रहा हूं। एक नये लोक की ओर।

1—रूसी कुतिया।

तभी सुना—'जय हिन्द मास्टर जी !' धुंध का पर्दा फाड़ कर मुराद अली बकरवाल ऐसे भीतर आ खड़ा हुआ, मानो वह नए लोक का प्राणी मेरा स्वागत करने के लिए आया हो।

इस से पहले कि मैं उसे बैठने के लिए कहूं, उसने खड़े-खड़े ही कहा—"कल हमारे डेरे पर जशन है। मैं आप को दावत देने आया हूं। आदमी भेज दूंगा।"

मुराद अली ने यह न्योता कुछ ऐसे ढंग से दिया कि मैं बिना चूं-चरां किए, हां कह बैठा। —"अच्छा मैं चलता हूं, अभी दूसरे डेरों पर भी कहना है।"

—इतनी धुंध है, कहीं पांव फिसल जाएगा थोड़ा रुक क्यों नहीं जाते। "हा : हा : हा : मुराद अली हंस पड़ा"—मास्टर जी इस धुंध में तो हम वैसे चल फिर सकते हैं, जैसे आप लोग आंखों पर काले खोपरे चढ़ा कर चलते हैं।

हंसता हुआ मुराद अली धुंध में डूब गया। इतनी खुल कर भी मनुष्य हंस सकता है, यह मैंने आज ही जाना।

मुराद अली मेरा चिर परिचित नहीं है। परन्तु वह उन व्यक्तियों में से है, जो पहली ही भेंट में अपनापन उगा लेते हैं।

मुराद अली एक खानाबदोश बकरवाल है। कुछ दिनों के लिए उसका डेरा ऊपर के जंगल में ठहरा हुआ है। पांच-सात दिन पहले अपने लड़के को वह स्कूल छोड़ने आया था। बस यही मेरी और उसकी पहली भेंट थी।

दूसरे दिन सायं-काल को मैं मुराद अली के डेरे जा पहुंचा। एक

घने-जंगल के बीच खुले मैदान में उसका डेरा था। बड़े-बड़े लम्बे बालों वाली बकरियां व गोल-गोल फूली हुई तगड़ी भेड़ें बैठी-खड़ी जुगाली कर रहीं थीं। उनके पास ही चार पहाड़ी नसल के घोड़े चर रहे थे। आंगन के बीच रंग-बिरंगे पट्टुओं पर स्त्रियां पंक्तियों में बैठी हुई थीं। उन्हें कोई भुना हुआ अनाज व मक्खन परोसा जा रहा था। वह साथ-साथ गा रही थीं और एक दूसरी के मुंह में कौर देती जा रही थीं। यह पारस्परिक मैत्री की रस्म थी।

मैदान की दूसरी ओर से मांस भूनने की गंध आ रही थी। खुली आग पर, बांसों में बकरे लटका कर भुने जा रहे थे। तीन व्यक्ति बड़े-बड़े बर्छों से उन्हें परत दे रहे थे। बर्छों की तेज़ नोक से मांस के छोटे-छोटे टुकड़े कट-कट कर हवा में उड़ रहे थे। उन पर नन्हे बच्चे व कुत्ते झपट रहे थे।

एक ओर जवान-छैले कानों में उंगलियां ठूंसकर अपने मन के भाव किसी अदृश्य प्रियतमा के लिए शून्य में घोल रहे थे।

मुराद अली व्यस्त था। बड़ी-बड़ी परातों में मक्की का दलिया भेड़ बकरियों को भेजा जा रहा था। मुझे देख मुस्करा कर बोला "मास्टर जी! सब की दावत है, इन की भी तो होनी चाहिए न?"

खाने पीने के पश्चात खेलों के करतब सम्पन्न हुए। अन्त में बन्दूक के निशानों का मुकाबिला हुआ जिस में स्त्रियां व पुरुषों ने बड़े साहसिक निशाने साधे।

काफी रात गये, जशन समाप्त हुआ। मुराद अली मशाल लेकर मुझे लौटाने आया। मशाल की रोशनी में उसका चेहरा तमतमा रहा

था। तिरछी दाढ़ी, बारीक मूंछें, जो होठों के सिरों से ऊपर उठ गई थीं। मूंछों के ऊपर सख्त चोंच की तरह नाक। छोटी पर तेज़ चमकीली आंखें। वह आँखें तब और छोटी और अधिक चमक पड़तीं जब वह चीते व रीछों से हुई अपनी मुडभेड़ों की दिलचस्प घटनायें सुनाता।

—मास्टर जी! सब से मजेदार झड़प तो मेरी भूत से हुई।

—भूत से?

—जी, भूत से। आप को यकीन नहीं? लीजिए मैं आप से सारी घटना कहता हूं।

—जिस वर्ष दंगे फसाद हुए थे। उसी वर्ष हम लोग नीचे ढलने की बजाये पूर्व की ओर निकल गये। यह राहें हमारे लिए अजनवी थीं। शायद कोई इन्सानी पांव उधर से पहले गुजरें हों।

हम आठ डेरे थे।

चलते-चलते हम एक सरसब्ज चरागाह में पहुंचे। चरागाह एक तरह की छोटी सी घाटी थी। घास से भरपूर वहां ऐसी जड़ी बूटियां थीं जो रात को तारों की तरह जगमगाती। हम इस नई जगह को देख कर बड़े खुश हुए। जिस जगह खुल कर घास-चारा मिले हमारे लिए तो वही जन्नत है।

पर, दूसरे दिन से ही हमारी भेड़-बकरियां कम होना शुरू हो गईं—आज इस डेरे की, कल दूसरे की। इसी तरह प्रतिदिन घटने लगीं।

—कोई जंगली जानवर खा जाता होगा—मैंने कहा।

—हम भी यही सोचा करते, पर खून के कहीं निशान भी तो मिलते और फिर हमारे कुत्ते जिन के दांत रीछ और चीतों के खून से पले हुए होते हैं, उन के होते हुए यह कैसे हो सकता था ? कौन सी आसमानी बला उन को उठा ले जाती थी। यही बात हमें हैरान कर रही थीं।

एक दिन अचानक मेरी नज़र सामने के दर्रे पर पड़ी। किसी मनुष्य की धुंधली आकृति वहां से गुज़री। मैंने डेरे के दूसरे आदमियों को यह बात सुनाई, पर किसी ने मेरी इस बात का विश्वास नहीं किया।

दूसरे दिन डेरे के एक और आदमी ने उसी प्रकार की धुंधली आकृति वहीं पर देखी। इस के बाद तो लभगभ सभी ने उसे देखा।

अब यह बात साफ थी कि वह आकृति किसी मानव की नहीं बल्कि भूत या जिन्न की थी। मीलों आगे-पीछे कोई आबादी नहीं। कोई रास्ता पगडण्डी नहीं। डेरे के सभी लोगों की एक ही राय थी कि भेड़-बकरियों को यही भूत खा रहा है।

रात को डेरों के सभी मर्द औरतें एकत्र हुए और अन्तिम फैसला हुआ कि कल यह जगह छोड़ दी जाए और पीछे लौट चलें।

मैंने इस के विरोध में कहा—पीछे लौटने का मतबल होगा, माल मवेशियों को भूखों मारना।

—और दूसरा कौन सा रास्ता है ? किसी ने पूछा।

—क्यों नहीं हम इकट्ठे होकर वहां चलें और इस भ्रान्ति का

अन्तिम निर्णय कर लें कि आदमी ज्यादा ताकतवर है या दर्रे में छिप-छिप के रहने वाला भूत।

मेरी इस राय से, उन्हें मेरे दिमाग के सही होने में शक हुआ। मेरे वालिद—जो उस सभा के पंच थे—मेरी इस मूर्खता पर सख्त नाखुश हुए। पर मैं भी अपनी ज़िद पर अड़ा रहा—यदि आप में से कोई भी मेरे साथ जाने के लिए तैयार नहीं, तो मैं अकेला ही कल सुबह वहां जाऊंगा। आप लोग तीन दिन तक मेरा इन्तज़ार ज़रूर करें। मैं यह कह कर उठ आया। मेरे वालिद व मेरे होने वाले श्वसुर भी मेरे पीछे-पीछे चले आए। दोनों होने वाले सम्बन्धियों ने कुछ इस तरह का सम्बन्ध जोड़ कर मुझे गालियां दीं कि खुदा की पनाह। अम्मां ने रोना-धोना शुरु कर दिया। मैं हैरान था कि हमारे बुजुर्ग मोह वश हमें कितना बुजदिल बना देते हैं। पर, मैं अपनी बात पर अटल रहा।

सुबह मुंह-अन्धेरे मैं घर से निकल पड़ा। मैं अकेला नहीं था। मेरी तेज़ कुल्हाड़ी व मेरा कुत्ता मेरे साथी थे।

हम अभी कोई एक कोस गये होंगे कि कुत्ता भौंक उठा। मैंने देखा, एक परछाईं हमारी ओर बढ़ती चली आ रही थी। कुत्ता उस की ओर झपटा पर उसके पास पहुँचते ही वह चुप हो गया। वह परछाईं मेरी ओर बढ़ती चली आ रही थी।

—कौन है ? मैंने पूछा।

कोई उत्तर नहीं मिला।

वहीं रुक जाओ। आगे बढ़े तो धड़ से गर्दन का रिश्ता मिट जाएगा—मैंने चीख कर कहा।

फिर भी कोई उत्तर नहीं मिला।

मैंने उस की ओर बढ़ कर, कुल्हाड़ी को मजबूती से कन्धों पर लहरा दिया।

तभी हंसने की आवाज़ आई।

—कौन ? हमीदा।

यह हमीदा ही थी। मेरी छोटी बहन।

—मेरे पीछे क्यों भागी आ रही हो।

—पीछे नहीं साथ ही आ रही हूँ।

—मैं गुच्छियां (कुकरमुत्ते) ढूंढने नहीं भूत से भूझने जा रहा हूं।
—मुझे सब मालूम है—उसने हंस कर कहा—पर मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी। देखो यह रोटियां मैंने सुबह तुम से भी पहले उठ कर पकाई थीं। देख लो, तीन दिन के लिए काफी हैं न—हमीदा ने अपनी कुल्हाड़ी के दस्ते से टंगी रोटियों की गठड़ी दिखाते हुए कहा।

मुझे अपनी बहन की जिद और बहादुरी दोनों पर भरोसा था।

अब हम तीन साथी थे।

पहाड़ियों की चोटियों से कच्ची धूप नीचे की ओर फैलती चली आ रही थी। लगभग तीन कोस सफर हम तै कर चुके थे। अब हमारी राह एक सीधी चढ़ाई थी। जो चढ़ाई नहीं बल्कि पहाड़ की सीढ़ी दिखाई देती थी।

कुत्ता हम से पहले ऊपर जा पहुँचा। वहां से उसके रुक-रुक कर भौंकने की आवाज हम ने सुनी। उसके भौंकने का ढंग बता रहा था

कि उसकी मुठभेड़ किसी से हो गई है। हम जल्दी-जल्दी ऊपर पहुंचे। वह एक छोटी गार के पास खड़ा जोर-जोर से भौंक रहा था। मैंने गार के ऊपर से एक पत्थर हटा कर देखा। अन्दर एक अजीब किस्म का जानवर था जिसे हम ने पहले कभी नहीं देखा था। वह रीछ से मिलता जुलता था, पर उसके बाल भूरे थे।

मैं गुफा के द्वार के ऊपर जा खड़ा हुआ। हमीदा ने एक भारी पत्थर ऊपर के छेद से अन्दर धकेला। वह चीखता-चिल्लाता बाहर निकला। अभी उसके शरीर का अगला हिस्सा ही बाहिर निकला था कि मैंने हवा में लहरा कर जोर से कुल्हाड़ी उसके सिर पर दे मारी। जो उसके सिर में ऐसे धंस गई जैसे सख्त लकड़ी में धंसती है। रही-सही कसर हमारे कुत्ते ने पूरी कर दी।

गार में खाली शहद के छत्ते व बकरियों की हड्डियां पड़ी हुई मिलीं। बकरियों के मरने का रहस्य अब खुल चुका था।

—"पर, तुम लोगों की सख्त रखवाली व कुत्तों के होते वह कैसे बकरियों को मारने में सफल हुआ—मैंने पूछा। इस बात का ठीक उत्तर तो मरहूम (स्वर्गीय) ही दे सकता था—मुरादअली ने हंस कर कहा—मेरा विचार है जब धुंध अधिक फैलती थी उसी समय यह एक आध बकरी उठा, इधर भाग आता होगा।

—मैंने हमीदा का मन परखने के लिए पूछा—अब आगे जाने की क्या ज़रूरत है?

—पर, वह कौन बला है। इसका भेद अभी बाकी है। हमीदा ने दर्रे की ओर इशारा करके कहा।

दोपहर को हम दर्रे पर पहुँचे। वहां इतमी घनी धुंध थी कि हमारा कुत्ता—जो हमारे साथ चल रहा था हमें न देख सकने के कारण ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगता।

दर्रे की उत्तर की ओर कोई दो कोस चढ़ाई चढ़ कर हम एक मदान में पहुँचे। धुंध के कारण उस की लम्बाई चौड़ाई का अनुमान न लग सकता था। मैदान में बड़ी नर्म घास उगी हुई थी, जिस पर चलते ऐसा लगता, पांव धरती में धंस रहे हैं।

अब किसी क्षण भी भूत से भेंट हो सकती थी। इस लिए मैंने बाकी बची हुई रोटियों को कम्बल में बांध कर उन्हें कमर पर कस लिया। हमीमा ने ओढ़नी की जगह एक बारीक इकहरी लोई ओढ़ रखी थी। उसने उसे कमर पर बांध लिया। हरेक आफत से भिड़ने के लिए हम दोनों भाई-बहन पूरी तरह लैस हो गये थे। हमारे हाथों में दो तेज कुल्हाड़ियां थीं। जिन्हें हमारे हाथों पर और हमें उन की तेज धारों पर पूरा यकीन था। हमारा कुत्ता हमारी तैयारी व वातावरण की गम्भीरता को देख कर बड़ी मुस्तैदी से कान खड़े किये इधर उधर सूंघ रहा था।

हमीदा बड़ी खुशी थी, कहने लग—देखो, कितना मुलायम घास है, और फिर मैदान, हम इसी जगह डेरे ले आयेंगे। ठीक है न ? मैं हमीदा की बात का कुछ उत्तर देता, इस से पहले मुझे सामने—बीस-तीस गज़ की दूरी पर—एक गुफा का धुंधला द्वार धुंध में डूबता, हुआ दिखाई दिया। जो शायद मैदान की अन्तिम मीमा पर स्थित था।

हम उसी ओर चल पड़े। अब हम अपनी मंज़िल पर पहुँच चुके थे। गुफा के अन्दर से आग जलने की गंध आ रही थी। मैंने हमीदा को इशारा किया कि वह कुत्ते को पकड़ रखे। कहीं ऐसा न हो कि वह गुफा के अन्दर चला जाये, या भौंकने ही लगे।

एक-आध घड़ी हम वहां खड़े रहे। गुफा के अन्दर से न किसी के बोलने की आवाज़ आई और न ही कोई बाहर ही निकला। मैंने झांक कर अन्दर देखा वहां कुछ भी दिखाई न दिया। गार आगे से मुड़ी हुई थी।

अब धुएं के साथ-साथ मांस भूनने की गंध भी बाहर आ रही थी। जिस से हमारा कुत्ता मतवाला हो रहा था। मैंने साहस बटोर कर, गुफा के पास मुंह ले जाकर ज़ोर से हांक लगाई– जो कोई भी जिन्न बला तुम हो, बाहर निकल आओ।

किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। मैंने दो बार फिर आवाज़ लगाई।

गार किसी के खांसने से कांप उठी। हम सम्भल गये।

मैंने हमीदा की ओर देखा। वह बड़ी तेज़ व तिरछी आंखों से गार की ओर देख रही थी।

खांसने की आवाज़ फिर हुई। ऐसे लगा खांसने वाला खांस नहीं रहा, गला साफ कर रहा है।

तभी सुनाई दिया।

—तुम कितने जने हो—यह बकरवाली आवाज़ थी।

—तीन, दो जने, एक कुत्ता।

—अपने हथियार ठिकाने पर ही रहने देना, जब तक मैं अपनी बात न कह लूं। बोलो मन्जूर है ?

—मन्जूर।

वह गुफा के मुंह पर आकर खड़ा हो गया। ऐसा लगा बड़ी गर्मी है और सारे शरीर में सूईयां चुभ रही हैं।

कुत्ता उस पर टूट पड़ा।

—कुत्ते को थाम लो—ऐसे मालूम हुआ वह नहीं गुफा बोल रही है।

मैंने हमीदा की ओर देखा, उसने कुत्ते को पकड़ लिया।

उसके शरीर पर बड़े घने, लम्बे काले बाल थे। ठीक जैसे कि रीछ के होते हैं। मगर उसके सिर व दाढ़ी के बाल सफेद व बड़े खूबसूरत मुलायम थे। वह ऐसे लग रहा था जैसे जले हुए देवदार के ठूंठ पर पाला (बर्फ) पड़ा हों। उस की भौहें पलकों पर झुक आई थीं।

—रास्ता भूल गये हो या आदमी से तंग आकर बसेरा बदलना चाहते हो ? उस ने बड़ी ठेठ बकरवाली में पूछा।

—नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है, आप के साथ मुलाकात करने के लिए ही हम आए हैं।

—यह लड़की कौन है ?

—मेरी बहन।

—हूं। बाहर बड़ी ठण्ड है। गुफा के अन्दर चले आओ।

—नहीं, अभी चल कर आए हैं, खास ठण्ड नहीं लग रही है।

— अच्छा बैठ जाओ, खड़े-खड़े थक जाओगे।

बैठने में खतरा था। मैंने कहा—हम ठीक हैं; आप अपनी बात शुरू करें।

—बात !——उसने एक निश्वास लिया, जैसे धूनी का कोयला सूं ऊं ऊं ऊं की ध्वनि करके बुझ जाता है। थोड़ी देर रुक कर वह बोला—मैं भी बकरवाल था और इस कहानी का जन्म तब हुआ जब मैं तुम्हारी तरह जवान था। साथ वाले डेरे में एक लड़की थी। उसके साथ मेरे विवाह की बात पक्की हुई थी। विवाह को अभी दो तीन महीने बाकी थे कि सुना— उसके पेट में बच्चा है। मैं उस लड़की को बड़ा चाहता था। मिलन की सुखद आशा में मैंने कितने ही संयोग और वियोग के गीत गा-गा कर पहाड़ जैसा समय काटा था।

यह घटना हमारी जाति में उस समय की पहली घटना थी। सगाई तो टूटनी ही थी।

मुझे रह-रह कर उस लड़की पर ज़हर चढ़ रहा था। कितनी मासूम दिखाई देती थी। मुझ से इतनी शर्म कि पास से गुज़र जाऊं तो तांबे की भान्ति हो जाये। बेशर्म कहीं की।

उसके बाप ने उसे बुरी तरह मारा और बिरादरी में कह दिया कि वह उसे जान से मार देगा।

मैंने उससे मिलने का फैसला किया। आधी रात को मैं उनके डेरे गया। फाल्गुन महीने की सर्दी में उसे बाहर खूंटे से बांध रखा था। अजब तरह की हल्की-हल्की चीखें उसके काम्पते होठों से उबल कर एक अल्प घेरे की वायु को कम्पित कर रही थीं।

मुझे देख उसका हौसला टूट गया। सूखे पत्ते की भान्ति कांप-कांप कर वह फूट-फूट कर रो पड़ी।

मैंने उसे खोल दिया। वह मेरे पांव पर लुढ़क पड़ी मुझे लगा बर्फ का एक बड़ा तोदा मेरे पाँव से चिमट गया है।

—अपने हाथों मेरा गला घोंट दो। यह वह पहले शब्द थे, जिन की कल्पना में मैंने कोयल के तराने हेच समझे थे।

मैंने उससे उस शैतान का नाम पूछा। उसने बताया उस दिन साथ वाले जंगल में मचान लगे हुए थे। सायंकाल को बड़ी आंधी-तूफान चला। हमारी तीन भेड़ें जंगल में रास्ता भूल गईं। मैं उन्हें ढूंढने जंगल में गई थी कि शिकारियों ने मुझे पकड़ लिया। वह तीन थे और मेरे हाथ खाली थे।

मेरा खून उबल पड़ा। मगर उस रात को बीते अब छः सात महीने हो चुके थे।

मैंने उसे यकीन दिलाया कि मैं अब भी उसके साथ निकाह करूंगा। वह मेरे पांवों पर से फिर लिपट गई। उसके रोने की आवाज बिफर गई। पास जुगाली करती हुई बकरियां व उनकी रखवाली में खड़े कुत्ते चौकन्ने हो गये।

—तुम हौसला रखो, मैं अभी लौट के आता हूं और अब चुप हो जाओ, कहीं ऐसा न हो तुम्हारा बाप जाग पड़े। मैं यह कह कर अपने डेरे लौट आया। अब्बा को उठा कर मैंने साफ-साफ कह दिया कि उस लड़की के पेट में मेरा बच्चा है। अब्बा पर मानों किसी ने उबलता हुआ तेल डाल दिया। उन्होंने चारपाई से उचक कर मेरा

गला दबोच डाला। गुस्से के मारे उनके मुंह से शब्द नहीं निकल रहे थे—तुम दोनों के लिए यही सजा है कि तुम्हें जंगल में बांध दिया जाये ताकि जंगली जानवर तुम्हें चबा कर और जंगली हो जायें।

बड़ी मुश्किल से गर्दन छुड़ा, मैं उस लड़की के पास पहुंचा। बिना किसी भूमिका के मैंने उसे साफ-साफ कहा—मेरे और तुम्हारे जीने का एक ही रास्ता है कि हम धुंधले पहाड़ों के परे भाग जायें जहां मनुष्य का पांव भी न पड़ा हो। वह तैयार हो गई।

हम दोनों चल पड़े। चांद पहाड़ियों की पीठ से हो कर अब सिर से भी ऊंचा उठ आया था। बिना रास्ते व मंजिल के हम दोनों चले जा रहे थे।

कहीं बन्दूक चलने की आवाज आई।

—आज फिर मचान लगे हैं—मेरी साथिन ने धीरे से कहा। मुझे लगा मेरी कुल्हाड़ी बहुत दिनों से प्यासी है।

इक्का-दुक्का जानवर हमारे आगे-पीछे से बे-तहाशा भागे जा रहे थे। दूर से गीदड़ों जैसी आवाज में हांक डालने वाले मजदूर हो-हल्ला करके जानवरों को मचान की ओर भगा रहे थे।

अगले मोड़ से साफ दिखाई दिया, मचान पर दो तीन आदमी बैठे हुए थे। उनके और हमारे बीच केवल एक टीला था।

—तुम उनकी वाणी पहचान सकोगी ?

—देखने सुनने पर ही ठीक कह सकूंगी। तभी सुनाई दिया एक शिकारी कह रहा था—यह साले, गलत ढंग से हांक दे रहे हैं। सभी जानवर उधर खदेड़ दिये।

—यही है। उसने कहा नहीं, फुंकारा।

—तुम टीले पर चढ़ कर उन्हें इशारा करो। मैंने अपनी कुल्हाड़ी सम्भालते हुए कहा।

वह तीनों भी उसे पहचान गये। एक-एक करके वह टीले के इस पार आते गये, और सदा के लिए लेटते गये।

खून, जो आँखों में फैल कर इन्सान को अन्धा कर देता है। कीचड़ में रेंगते मेंढक की आवाज की भान्ति उनकी गर्दनों से वह रहा था। चांदनी में वह सांप की तरह चमकता हुआ उनके गलों से लिपट रहा था। जैसे मेरी कुल्हाड़ी ने नहीं, इसी सांप ने उन्हें डसा हो। फीकी चांदनी में कोई हांफता-सहमता पशु उनके ऊपर से चौकड़ी भरके लांग जाता।

हम चल पड़े। सुबह होने वाली थी। चांद की रौनक उजड़ रही थी। हम अभी खतरे में थे। घना जंगल जिस में हम छिप सकते थे, अभी दूर था। रात को हांके लगाने वाले मजदूर लौटने शुरू हो गये थे। हमने रास्ता छोड़ दिया। हमारा नया रास्ता चील के घने वन में से था। यह रास्ता बड़ा खराब था। सूखे हुए पत्तों पर हमारे पैर फिसल रहे थे। हमने जूते उतार लिए।

तभी सुना पत्तों पर किसी के फिसलने की भारी आवाज हुई। मैंने पीछे देखा, मेरी साथिन पत्तों में लिपटती हुई नीचे नाले की ओर लुढ़कती चली जा रही थी। मेरी आँखें अपने-आप मिच गईं। पर, तभी उसके कराहने की आवाज आई। वह कोई बीस गज नीचे एक दरख्त के तने से अटक गई थी। वह बच गई। पर उसी जंगल में उसने एक मुर्दा लड़की जन्मी।

कई दिनों के सफर के बाद हम इस मैदान में पहुंचे और वह जीवन व्यतीत करने लगे जो आज से हज़ारों साल पहले के इन्सान ने बिताया होगा।

मैं और हमीदा उस बूढ़े के पास जा बैठे। उस के शरीर पर बाल नहीं रीछ की खाल लिपटी हुई थी।

मुझे धुंधली स्मृति लौटी, जैसे कभी अब्बा इस घटना को दूसरे शब्दों में सुनाते थे।

मैंने हमीदा की ओर देखा उसकी आंखें भीगी हुई थीं।

—और फिर———मैंने पूछा।

—हमारे एक लड़का व एक लड़की और उत्पन्न हुए। पर, अब यह भाई बहन नहीं हैं——मगर बहन भाई ही समझो।

जब वह जवान हुए, एक दिन उनकी माता ने मुझे बताया कि इनका परस्पर सम्बन्ध अब बहन भाई का नहीं है।

पर, हमारे पास उसका क्या इलाज था। उन्होंने भाई-बहन देखे कहां थे? उन्होंने केवल मां-बाप को देखा था और भी इन्सान इस दुनिया में हैं, यह वह नहीं जानते। वह तो स्वयं एक नई दुनियां को जन्म दे रहे हैं।

तुम उन को देखना चाहो तो मैं बुलाता हूं।

उसने आवाज़ लगाई।

एक जवान मर्द और एक औरत आकर बूढ़े के पीछे खड़े हो गये। शायद वह पहले ही ग़ार के मोड़ पर, हमारी बातें सुन रहे थे। वह

हमें बड़ी फटी-फटी आंखों से देख रहे थे जैसे दर्पन में अपना प्रतिरूप देख रहे हों।

—इनकी मां—हमीदा ने पूछा।

—वह दो साल हुए हमें छोड़ गई और उसी दिन से मुझे लगा, मैं बसती से दूर हूं। बूढ़े की आंखों से आंसू नहीं मानों, वियोग के पवित्र-मोती गिर रहे थे।

—मैं आप का बसती में स्वागत करूंगा। मैं आप को दावत देता हूं, और यकीन दिलाता हूं कि बसती———वह मुर्झाई हुई हंसी हंसा जैसे रुलाई पर हंसी का मुलम्मा चढ़ा रहा हो।

—बरखुरदार! बसती तो मन की होती है। अपनी साथिन को जिसने पचास साल इस भयावने स्थान में मेरे साथ बिताये, उसे अकेला छोड़े दूं। मालूम पड़ता है मुहब्बत का दस्तूर तुम्हें नहीं आता। शायद तुम लोगों ने उसे बदल ही दिया है। बूढ़े ने अपने बेटे व बेटी की ओर इशारा करके कहा—इनको पूछ लो चाहें तो खुशी के साथ जा सकते हैं।

मैंने और हमीदा ने उनकी ओर देखा। उन्होंने नजरें झुका लीं, और बूढ़े को झुक कर सहारा दे, वह तीनों जने ग़ार की ओर चल दिए।

मशाल बुझ चुकी थी। चांद खरबूजे की फांक की तरह आकाश के एक कोने पर उग आया था। मैंने मुराद अली से विदा ली और थोड़ा नीचे चल कर एक पत्थर पर बैठ गया।

देवकू

कमरा धुएं से भरा हुआ था और बाहिर वर्षा बरस रही थी। खिड़की का एक पट खोल कर देवकू ने बाहिर झांका, सब कुछ धुंध में छिप गया था। टीले के नीचे नाला विजयी-स्वर में दहाड़ रहा था। धुएं की एक चादर बाहिर निकलने के लिए तेजी से खिड़की की ओर लपकी, परन्तु बाहिर के एक तेज झोंके ने उसे पुनः अंदर धकेल दिया। देवकू की देह कांप उठी। सांकल चढ़ा कर वह चूल्हे के पास जा बैठी।

गांव के बाहिर इस सुनसान टीले पर यह अकेला घर देवकू का है। एक ओर गांव है, दूसरी तरफ बर्फानी नाला। इसी नाले की रौनक है देवकू के सूने और एकाकी जीवन में। जब लड़ने के लिए हाड़-मांस का कोई प्राणी नहीं मिलता, तब वह अपने दिल की भड़ास उसी नाले पर निकालती है—"यह कोई नाला है? शैतानी पंजा। पल में तोला पल में माशा। इसके पानी का क्या भरोसा? जानें तो हमारे लोगों की लेता है और पानी देता है उन्हें जो नीचे मैदानों में खेत बिछाए बैठे हैं। भला इस से अधिक और क्या बेईमानी होगी। कसम लेलो जो कभी इस से......चुल्लू भर पानी भी पिया हो।

और जिस दिन किसी हाड़ मांस वाले से दिल खोल कर गाली-गलोज हो जाती, उस रात वह नाले की ओर मुंह उठा कर सन्तप्त

हृदय से कहती --"तुम सब कुछ देख सुन रहे हो। मुस्टंडा अकेली बूढ़ी औरत पर किसी तरह आस्तीनें चढ़ा कर आरहा था, जैसे जंगली सुअर हो। इस की बलि तूने ही लेनी है। मेरी सुनवाई तेरे तक ही है। देवकू सुबकियां लेने लगती – देवकू ने क्या-क्या दुःख-तकलीफ उठाई है इसका पूरा लेखा-जोखा तेरे पास ही है। मुझ दुखिया का न खसम न बेटा-बेटी, दूर-पास का भी कोई अपना नहीं। तेरे सहारे मैंने अपने आप को बचाया है। तूने ही मेरी लाज रखी है। परसाल सब ने कहा "देवकू ! नाला टीले को काट रहा है। तू इस जगह को छोड़ दे नहीं तो घर-गृहस्थी के साथ जल-समाधि लग जाए गी। मुए कहीं के, जल समाधि लगे तुम्हारी उन जवान-जहान बेटियों की जिनके रूप के चर्चे नीचे मैदानों तक गांव को बदनाम कर रहे हैं। भला हो तेरा। सदा ठण्डे नीर बहें। तूने मेरी सुन ली। मैंने एक बार ही हाथ बान्ध कर विनती की थी – 'जलदेव ! इसी घर में ब्याह कर आई थी। छः महीनों में यहां ही विधवा हुई। बूढ़े आदमी की खांसी में तेरी फूंकार भी डूब जाती थी। लेकिन एक दिन वह खांसी सदा-सदा के लिए तेरी फूंकार में डूब गई थी। सारी उम्र रो-पीट कर इसी घर में गुजार दी। इस पर भी मुए गांव वालों ने क्या-क्या किस्से न जोड़े देवकू के। इन के मुंह में चिता की खाक। यदि मैं बदला चाहती तो एक बार नहीं अनेक बार ले सकती थी। मगर देवकू इतनी ओछी होती तो क्या यारों के साथ भागती इन की बेटियों को चोटियों से पकड़ कर वापस घर पहुंचाती ?...... तूने मेरी सुन ली। अब देवकू की इस घर से अर्थी ही जाएगी...वह भी अगर गांव वालों ने दया दिखाई, नहीं तो......।"

देवकू की लड़ाई और सुलह धूप और छांव की आंख मिचौली होती। दिल खोलकर वह लड़ती और वैसे ही सुलह भी कर लेती। आखिर कोई उस से कब तक रूठे रहता। गांव भर का रास्ता उसी के आंगन से होकर जाता है। तम्बाकू-पानी के लिए तो दुश्मन को भी वह रोक लेती। जो तम्बाकू पीयेगा क्या वह केवल धुंआ ही उगलेगा ? देवकू सिर पर रूमाल कसे, आंखें सिकोड़ कर कहती—"देवकू की जीभ सभी देखते हैं उसकी अन्तर-आत्मा कोई नहीं देखता। मुफ्त में तुम लोगों की दिन रात चौकीदारी करती हूं। ऐरा-गैरा आदमी गांव में पैर तो रखे। पांव तोड़ कर नाले में फैंक दूं। मगर जो रास-लीलाएं गांव के अन्दर अब हो रही हैं वे भी मुझ से छिपी नहीं। मैं तो कहूं कुत्ता, कुत्ता ही है चाहे वह काला हो चाहे सफेद। मैं तो बोले बिना रहूं नहीं। सारी उम्र धर्म निभाया है, इस गांव की धरती से। इस की इज्जत के लिए दिन को सोई और रात को जागी। इसी लिए गांव की गोरियां और निगोड़े गबरू बड़ी बे-सबरी से उस दिन का इंतजार कर रहे हैं जब देवकू की चिता धूं-धूं करके नाले पर जलेगी। और फिर वे...। लेकिन जब तक देवकू की सांस चलती है वह किसी को गांव में आंख-मट्टका नहीं करने देगी। ...और उसके बाद...देवकू ने अपनी आंखे मीच लीं, जैसे उसके सन्मुख उस दिन का भयंकर दृश्य था।

देवकू के लिए यह बहुत कठिन था कि वह एक बार बोलना शुरू करके फिर अपनी जबान को लगाम लगा ले।

कमरा धुएं से भरा हुआ था। बाहिर अब वर्षा जोर पकड़ गई

थी। हवा भी तेज बहने लगी थी। नाले की दहाड़ वर्षा-आंधी में मद्धम पड़ गई थी।

घुटनों पर हाथ रखकर देवकू उठी, कील से लटकी ढिबरी उतारी। चिमटे से पकड़ कर एक अंगारा ढिबरी के मुंह के ऊपर रखकर वह उसे जोर से फूंकने लगी। लगातार फूंके मारने से देवकू के होठों से राल टपक पड़ी। भक से ढिबरी की जोत जल उठी। यथास्थान पर उसे लटका कर देवकू ने अपने दोनों हाथ जोड़ कर दीप-वन्दना की। उपलों के कड़वे धुएं में मिट्टी के तेल की बास धुल मिल गई। इस बास को देवकू बसते घर की निशानी मानती है।

धुएं की परछाइयां दीवारों पर नाच रही थीं, जैसे धुआं उन्हीं से सुलग रहा हो। देवकू के सिर के फैले-फैले, अधपके, और उलझे हुए बाल ऐसे लग रहे थे जैसे उसके सिर पर धुएं का एक गुब्बारा अटक गया हो।

हवा जोर से दरवाजे पर धक्के मारने लगी! पुराने पट चटखने लगे।

"—मौत-मौत तुझे कहीं से मौत आए" अंधड़ को देवकू ने गाली ही नहीं—शाप भी दिया—"तेरा पाला जग जाए और तू सिल पत्थर हो जाए।"

"कोई अन्दर है?" बाहिर से किसी ने पूछा।

—"कौन है?" देवकू डर गई। उसे लगा अन्धड़ की आत्मा ने जैसे सब कुछ सुन लिया हो।

"हम हैं, मुसाफिर।"

देवकू घुटनों पर दोनों हाथ रखकर उठी। उसका ऊपर का धड़ धुएं के साम्राज्य में डूब-सा गया।

उसने सांकल का काम देने वाली रस्सी को खोला। एक शीतल हवा का झोंका देवकू की देह को छूता अन्दर चला आया। दरवाजे के भीतर बौछार से मिट्टी गल गई थी। जब भी कभी बरखा होती, यही होता है। इसके किसी स्थायी बन्दोबस्त के बारे में सोचती देवकू चूल्हे तक लौट आई।

"भई, चले आओ न अन्दर" देवकू ने बैठ कर दरवाजे की ओर देखते हुए कहा। मुसाफिर तब तक अन्दर की ओर दीवार से सट कर खड़े हो गये थे। देवकू की निर्बल दृष्टि धुएं से उलझ कर रह गई। खीझ कर बोली "तुम मुसाफिर हो कि बकरियां? मैं कह रही हूं, आग के पास, इधर आके बैठो। ...और रस्सी को ठीक से चढ़ा आना यह हवा के धक्के से अपने आप भी खुल जाती है।

वे आकर देवकू के पास खड़े हो गए। देवकू ने मुंह ऊपर उठा कर देखा एक जवान लड़का और एक जवान लड़की जिनके कपड़ों से पानी चू रहा था।

"ये कपड़े बदल डालो" देवकू ने आदेश दिया।

वे वैसे ही खड़े रहे।

देवकू उबल पड़ी—'क्या और कपड़े नहीं हैं? नहीं हैं तब भी मुंह में जीभ तो है। क्या घर से भाग कर आ रहे हो? तुम्हारे जैसे मुसाफिर मैंने कभी नहीं देखे। क्या तुम सचमुच मुसाफिर भी हो?" देवकू ने घूर कर उनके पैरों को देखा। उसने सुन रखा था

कि जिन्न-श्रोर भूतों के पांव टेढ़े होते हैं। मगर यह पांव सीधे ही नहीं उजले श्रोर स्वस्थ भी थे।

देवकू ने एक ऊनी चादर लड़की को देते हुए कहा—"इसे लपेट ले।" फिर उसने लड़के के लम्बे-तगड़े शरीर की श्रोर देखते हुए कहा —"अब तुझे क्या लिपटाया जाए ? मेरे घर में तेरे नाप का कोई कपड़ा नहीं है।"

लड़के ने शान्त स्वर में कहा—"नहीं उनकी जरूरत नहीं। आप ही सूख जाएंगे!" देवकू ने जीभ चटका कर कहा—"सो तो मैं देख रही हूँ। देह में बड़ी गर्मी है। मगर देवकू के घर में कोई दवा-दारु नहीं है।" इतना कह कर वह धरन से कपड़े उतारने लगी—"यह लो एक चादर कमर के लिए श्रोर यह कम्बल ऊपर श्रोढ़ लो।"

कपड़े बदल कर वे दोनों चूल्हे के पास आ बैठे। इतनी जल्दी उन का यह बहरूप हो जाएगा, उन्होंने कब सोचा होगा। सत्यवत: इसी लिए दोनों एक दूसरे को देख कर मुस्काए।

देवकू एक आंख दाव कर सोच रही थी—ये इस कुसमय कहां से आए हैं ? पहले तो इन्हें कभी देखा नहीं। दाल में कुछ काला जरूर है। गीदढ़ की मौत आती है तो शहर की श्रोर भागता है। यह मुस्टण्डा जरूर इस लड़की को कहीं भगा कर ले जा रहा होगा। आँखें सिकोड़ कर उसने पूछा—"कहां से आ रहे हो ?"

लड़की ने, जिस के गोरे मुख पर पानी की बून्दे अभी भी चमक रही थीं, सहमे हुए लड़के की श्रोर देखा। लड़के ने थूक गटक कर कहा—"जनक पुर"।

"जनक पुर" देवकू ने एक उपले के कूबड़ पर बेलन मारते हुए पूछा—"जाना कहां है ?"

लड़की ने फिर लड़के की ओर वैसी ही भयभीत नजरों से देखा और उसने अपने होंठ चाट कर उत्तर दिया—"देवी पुर"।

लड़के की आंखों की ओर देखते, देवकू ने फिर पूछा—"यह लड़की तेरी क्या लगती है ?"

इस बार लड़के ने लड़की की ओर देखा। लड़की ने ऊनी चादर को खींच कर अपने कानों को ढांपते हुए कहा—"यह मेरे घर वाले हैं।"

देवकू ने ढिबरी उतार कर लड़की के सामने रख दी। लड़की ने अपना मुंह घुटनों में छिपा लिया।

"ब्याह हुए कितना अरसा हुआ ?" देवकू ने शंकित दृष्टि से लड़के को देखते हुए पूछा।

लड़के ने जो बूढ़ी के इन सवालों से परेशान हो चुका था, अपने माथे से पानी के कतरों को पूंछते हुए बताया—"अभी एक ही बरस हुआ है।"

देवकू ने लड़की के माथे पर एक ठोंका देते हुए कहा—"ब्याह हुए बरस भर हो गया और तू अभी घुटनों में मुंह छिपा रही है। चल उठ कर ढोडे सेंक ले। मक्की का आटा कनस्तर में पड़ा है।"

लड़की ने कहा—"ढोडे क्या करने हैं ?"

"क्यों खाने नहीं ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"भूख नहीं है।"

—'तेरी गर्दन को क्या मोच आई हुई है ?" "नहीं तो" लड़की ने अपनी गर्दन उठा कर कहा।

"उठ कर ढोडे सेंक ले। भरे और खाली पेट पहचानने की नजर अभी मेरी है।" देवकू ने बड़े अधिकार पूर्ण ढंग से कहा। लड़की ने यंत्रवत् आटा निकाला और उसे लकड़ी की परात में मलने लगी।

देवकू उसे निहारती रही। थोड़ी देर के पश्चात् अपना मुंह उसके मुंह के पास ले जाकर धीरे से बोली—"क्या तू दुर्गी की बेटी तो नहीं......?"

लड़की के हाथों से गीला आटा नीचे गिर पड़ा।

देवकू ने गर्दन उठाई और कर्कश स्वर में पूछा—"क्या कृष्ण पुर गांव का नाम जनक पुर हो गया या तुम गोपियों ने कहीं और कृष्ण पुर बसाने की ठानी है ?"

लड़की नीचे गिरे आटे को उठाती रही। "यह मोती नहीं, गीला आटा है। एक बार मिट्टी में गिरा तो मिट्टी हुआ। इतना कह कर देवकू ने चूल्हे में एक जोर की फूंक मारी। सारा धुआं लड़की के मुंह पर फैल गया।

"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"घल्लो।"

जिस समय मैंने तुम्हारी मां को देखा था, तब तुम उसकी गोद

में थी। तूने पूरी शक्ल-सूरत अपनी मां की चुराई है। वही नयन-नक्श वही रंग रूप। तेरी मां दस गांव में एक शृंगार थी। पर, तुम उससे भी सरस हो।

छल्लो ने आंखें झुका लीं। उस का मुंह तमतमा रहा था। देवकू ने ढोडे को एक परत कराया। ढोडे के पकने की सोन्धी-सुगन्ध हवा में घुल मिल गई।

"ढोडे बनाने में तू बड़ी चतुर-चनार है। कुछ क्षण चुप रह कर देवकू बोली-किसी से सुना था कि दुर्गी की लड़की का व्याह अगले महीने तै हुआ है।"

छल्लो के हाथों से आटा फिर गिर पड़ा।

"तेरे हाथों का क्या हो रहा है?"

छल्लो चुप्प रही।

उपलों के छोटे-छोटे टुकड़ों को एक-एक करके चूल्हे में फैंकते हुए देवकू ने कहा—"रास्ते में घर है। कई मुसाफिर आते हैं। कई जाते हैं। यही सब देखते देवकू की उम्र गुजरी है।

छल्लो परात पर झुकी आटा मलती रही। देवकू की आंखें क्रोध से गोल हो गईं। कितनों की आंखों में धूल झोंक कर यह लड़की इस मुसटण्डे के साथ भाग रही है। मगर देवकू का नाम इसने नहीं सुना शायद! इस तरह भागती कई लड़कियां दुत्कार कर घरों को भेज दीं हैं मैंने! स्वयंबर रचा रहीं हैं, अपने मर्जी के खसम ढूंढ रहीं हैं, और एक हम थीं—खलिहान का अनाज, जिस के पल्लू में मां-बाप ने बांध दिया उस की होकर रह गईं।

ढोडे के जलने की वास ने देवकू की विचार-धारा को तोड़ा। छल्लो अपने में खोई हुई, आटा मल रही थी। तवे पर ढोडा जलकर चिपक गया था। चिमटे से खुर्च कर देवकू ने उसे उल्टाया। फिर हाथों से घुटने कसते हुए कहा— "अगले महीने तेरा ब्याह है, और तू...... ।"

छल्लो की आंखें भर आई—"वह मेरा ब्याह नहीं मौत है।"

देवकू ने नेत्र विस्फारित करते हुए लड़की की ओर देखा।

छल्लो कह रही थी— "......जिस के साथ मेरा ब्याह तै हुआ है, उसकी पोत्रियां भी मुझ से बड़ी हैं ....।" "......और अब तुम दोनों...... ।" देवकू बस इतना ही पूछ पाई।

"ऊधमपुर जा रहे हैं, समाज में ब्याह करेंगे।" छल्लो ने कहा।

देवकू का दन्तहीन मुख विक्षिप्तता से गोल हो गया।

जलते-सुलगते उपलों से धुएं से लिपटी, मद्धम, ध्वनि रहित लपटें तवे को छू रहीं थीं। ढिबरी की जोत अन्तिम क्षणों पर थी। कभी फफक कर वह उभरती, प्रकाश का घेरा छत तक फैल जाता और कभी डूब-सी जाती प्रकाश की आभा ढिबरी के इर्द-गिर्द एक दायरे में सीमित होकर रह जाती। कुछ ऐसी ही दशा छल्लो के मन की भी हो रही थी। वह कभी उभर रही थी कभी डूब रही थी।

तीनों चुप थे। केवल छल्लों के हाथों में थप-थप करते गीले आटे की ही ध्वनि सुनाई दे रही थी। ......जोर से फफक कर ढिबरी बुझ गई। जोत के ऊपर एक अंगारा कुछ क्षण चमक कर बुझ गया और धुएं की एक बारीक टेढ़ी-मेढ़ी लकीर बल खाती कमरे के धुएं में सदा

के लिए विलीन हो गई। अब उपलों की धीमी लपटें अपनी आभा उन तीनों के मुख पर छितरा रही थी। देवकू की आंखें और मुख प्रति क्षण गम्भीर होता जा रहा था। उंगलियों में पकड़े एक छोटे-से उपले के टुकड़े का उसने बुरादा कर दिया था। अपनी पलकें उठाकर उसने कठोर दृष्टि से चूल्हे के पास पड़े ढोडों को देखते हुए कहा—'अपने खाने के हिसाब से ही पकाना—मुझे भूख नहीं है।"

छल्लो पूछना चाहता थी—"क्यों भूख नहीं है ? पकाने वाली की आंखें भी तो खाली और भरे पेट पहचान लेती हैं।" परन्तु यह सब कहने की उसकी हिम्मत न हुई। हाथ के आटे की चकली को उसने तोड़ दिया और परात को एक ओर सरका कर हाथ से चिपके आटे को उंगलियों से मल-मल कर उतारने लगी।

बाहिर तूफान अब थम चुका था। दरवाजे की दरारों से उगते चांद की किरणें अन्दर आ रही थीं। देवकू उठ कर बाहिर आ गई। चांदनी में सब कुछ धूना-धूना दिखाई दे रहा था। नाले की अविराम गूंज निस्तब्धता को भंग कर रही थी। नाले की ओर मुख करके देवकू मूर्तिमान खड़ी हो गई।

कमरे के अन्दर वे दोनों गुम-सुम बैठे थे। चूल्हे के समीप ढोडे वैसे ही पड़े थे। उपलों के अंगारों पर बड़ी शीघ्रता से राख की दानेदार परतें बैठती जा रही थीं।

लड़के ने जीभ चटखाकर कहा—"यह तो सारा बना बनाया खेल ही बिगड़ गया।"

"क्या तुम इसे खेल समझते हो ?"

"मेरे कहने का मतलब यह नहीं था। असल में मैं कहना चाहता था कि यह बुढ़ियां तो सब कुछ जानती है, और जो कसर थी उसे तुम ने पूरा कर दिया।" लड़के ने रुखाई से कहा।

लड़की ने शान्त स्वर में कहा—"जब ओखली में सिर रखा है तब मूसलों से क्या डरना। जो होगा सह लेंगे।"

"मगर अपने घर वालों को तो तुम जानती ही हो। वे हम दोनों को कच्चा चबा जाएंगे। मुझे तो शायद पुलिस के हवाले कर दिया जाएगा "......और मुझे......? छल्लो ने घुटी हुई आवाज में पूछा।

लड़के ने कहा—"तुझे शायद उसी बूढ़े जैलदार की पांचवीं बहू बनना पड़ेगा, जिसे ज्योतिषी ने बताया हुआ है कि पांचवीं बहू से ही उसे लड़के का मुंह देखना नसीब होगा।

छल्लो कांप उठी—"नहीं, नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता। कभी नहीं। मैं नाले में कूद पडूंगी। अपनी जान देदूंगी।

लड़के ने विक्षिप्त भाव से कहा— "यह कोई नई बात होगी? कई लड़कियों ने नाले में जल-समाधियां लगाई हैं।"

छल्लो ने तड़प कर कहा—"लेकिन मेरी बलि अकारथ नहीं जाएगी। नाले में इतनी बाढ़ आ जाएगी.........इतनी बाढ़ आ जाएगी......।" उसकी आंखें भर आईं और गला रुंध गया।

"आओ हम यहां से भाग चलें।"

"नाले में पानी बहुत है।"

"किसी दूसरी ओर......।"

"बाहिर बर्फ जैसी ठण्डी चांदनी है। दूर से देख लिए जाएंगे और कहीं बैठ गए तो पाले में जम जाएंगे फिर हमारे कपड़े भी तो भीगे हुए हैं—लड़के ने एक जमुहाई लेते हुए कहा।

छल्लो ने कहा—"तुम उठो। हम नीचे नाले के रास्ते चलेंगे। चांदनी अभी वहां नहीं पहुँची होगी। रात हम किसी गुफा में काट लेंगे।"

गुफा वाली बात लड़के को सूझी ही नहीं थी। "हां ठीक है" वह उठ कर बूढ़ी के दिए कपड़ों के स्थान पर अपने गीले कपड़े पहनने लगा। तभी 'क्रींग' की आवाज से गीले और बोझिल पट धीरे से खुले। दरवाजे के सामने चान्दनी की एक चादर विछ गई। जिसके ठीक बीच में बिखरे वालों वाली देवकू की परछाई थी। दरवाजे को बन्द करके उसके सामने ही कम्बल विछा कर वह ढेर हो गई।

वे दोनों घुटनों पर ठोढ़ियां रखे किंकर्त्तव्यविमूढ़ बैठे रहे। चूल्हे से अब भी मद्धिम तपश आ रही थी।

दरवाजे की दरारों से चान्दनी की एक मोटी लकीर देवकू की देह पर पड़ रही थी। आज उसकी पसलियों के नीचे जैसे किसी ने उपलों की गर्म-गर्म राख बिछा दी थी। वह करवट पर करवट बदलती जा रही थी।

बाहिर पत्थरों पर जूतों में गड़े कीलों की ठक्-ठक् सुनाई दी।

"वे आगए" छल्लो ने ये शब्द ऐसे कहे जैसे उसने काम्पकर लम्बी सांस ली हो।

बूढ़ी ने एक और करवट बदली।

लड़का वैसे ही गुमसुम बैठा रहा।

अब आने वालों की आहट आंगन में सुनाई दे रही थी। वे मन्द स्वर में आपस में बातें कर रहे थे।

छल्लो लड़के से चिपक गई—यह मेरे भाई की आवाज है। साथ में वह भी है। "कौन ?" जैलदार लड़के ने पूछा ?

छल्लो ने घुटी और कमजोर-सी आवाज में कहा—"हां और भी आदमी साथ में हैं। अब मुझे काट कर नाले में फेंक दिया जाएगा।"

"मेरी बोटी-बोटी नोच दी जाएगी। लेकिन जब तक मेरी जान में जान है, तुम्हें कोई हाथ नहीं लगा सकता।"

दरवाजे पर रायफिल के कुन्दे से दस्तक हुई।

"यह रफल जैलदार की है। वह हमेशा अपने साथ रफल रखता है। वह मुझे मार देगा"—छल्लो सुबकने लगी—"मैं मरने से नहीं डरती। पर, में अभी मरना नहीं चाहती। मैंने सोचा था...... हाए क्या-क्या सोचा था......।" उसकी देह ठण्डे पसीने से तर होगई।

एक बार फिर दरवाजे को पीटा गया।

छल्लो कसकर कड़के से चिपक गई।

झल्लाकर देवकू उठी—"रास्ते का घर नरक का वास। न दिन को चैन न रात को......।" दरवाजे को खट से खोल कर बोली—"क्या कहीं आग लग गई है ?"

"नहीं एक लड़की भाग गई है।"

"तो मैं क्या करूं?"

"नाले में बहुत पानी है हमने सोचा शायद वे तुम्हारे पास रुके हों।"

देवकू उबल पड़ी—"क्या कहा मेरे घर में। मुझे तुम लोगों ने क्या समझ रखा है। क्या मैं ऐसी गई गुजरी छिनाल हूं? अगर ऐसी होती तो तुम लोगों को अपनी बेटियों को डोली में बिठाने का चाव ही रह जाता। सारी उम्र जो रखवाली की है उसका बदला यह चुकाया। ये तो दूर गांव के होंगे पर तुम तो नम्बरदार जी, सब जानते थे। मैं घर से भागने वाली चुड़ैलों को अपने घर में वास देने वाली हूं......बोलो चुप क्यों हो गये?"

वे चुप चाप लौट गये।

देवकू ने सांकल चढ़ा दी। 'बेटी भाग गई मैं कहती हूं तुम्हारे खूंटे पर गाय भी नहीं रहेगी। सब तुम्हारी करनी के फल हैं। और बूढ़ों के साथ अपनी जवान-जहान बेटियों के ब्याह रचाओ, ताकि देवकू के बाद और देवकुएं तुम्हारी बेटियों की रखवाली कर सकें...... ।"

उसकी सांस बुरी तरह फूल गई थी। उसकी बड़बड़ाहट अपनी अपनी ही सांस में डूब रही थी।

दूसरे कोने से छल्लो की सुबकियां उभर रही थीं। जैसे कोई बेटी अपनी मां से बिछुड़ते समय......... ।

कफ़न

ऊषा बादलों को गुलाबी रंग में रंग रही थी। बादलों के इन छोटे-छोटे समूहों को हवा धीरे-धीरे उड़ा रही थी जैसे कोई चरवाह अपनी भेड़-बकरियों को हांकता चला जा रहा हो।

नीचे, नदी की अनवरत कल-कल ध्वनि चारों ओर के सन्नाटे को समेटे हुए थी। नदी के किनारे-किनारे, संकरे मार्ग कर श्रीमती मांगे अकेली, धीरे-धीरे सैर को जा रही थी। उनके गोरे और फूले हुए मुख पर अनिश्चितता और विवाद के मिले-जुले भाव स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। उनकी साड़ी का सफेद आंचल हवा में लहरा रहा था और एक चंचल लट उनके सिकुड़े हुए माथे पर झूल रही थी।

धूप अभी नीचे नदी तक नहीं पहुँची थी, परन्तु ऊपर की ऊंचाईयां धूप में चमचमा रही थी। सामनी ढाल की घुमावदार संकरी पगडंडियों से खानाबदोश बकरवालों के परिवार अपनी भेड़-बकरियां ऊंची चरागाह में ले जा रहे थे। किसान अपने छोटे-छोटे खेतों में गोडाई करने में जुटे हुए थे। खेतों के आस-पास की हरयाली पर किरणें पड़ रहीं थीं और ओस के कण जगमगा रहे थे।

अपने में खोई हुईं, श्रीमती मांगे इन सब से अपरिचित-सी चली जा रही थीं। मार्ग की एक ओर भूरी चट्टानों के साथ-साथ असंख्य छोटे-छोटे जंगली गुलाब के फूल वायु में सुगन्धी घोल रहे थे। दूसरी

श्रौर नदी में लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठों को खेने वाले शान्त मन से गीत गाते जा रहे थे। श्रीमती मांगे, नीचे दृष्टि झुकाए ऐसे चली जा रही थीं जैसे उनकी कोई अमूल्य वस्तु इन राहों में खो गई हो। सहसा वे रुकीं, रास्ते के एक रेतीले टुकड़े पर उनके टैमी के पद्-चिन्ह दिखाई दिए। वे वहीं बैठ गईं, कांपती उंगलियों से पद्-चिन्ह छुए। उन्हें लगा टैमी के 'सूं सूं' कर सूंघने की धीमी आहट इस समय भी उनके कानों में आ रही है।

कल इसी रास्ते टैमी उनके साथ सैर को आया था। यह स्मरण होते ही उनकी बड़ी-बड़ी आंखें भर आईं। आंखों से झर कर एक आंसू उन पद चिन्हों में जा गिरा।

कल प्रातः तक टैमी बिल्कुल स्वस्थ था। दस बजे के लगभग वह चीखने चिल्लाने और ऐंठने लगा। डाक्टर को बुलाने, कस्बे में नौकर दौड़ाए गए, मगर एक घण्टे में ही उसने श्रीमती मांगे की गोद में दम तोड़ दिया।

बड़ी धूम से टैमी की अर्थी उठी। घाटी के सभी पहाड़ी लोग उसमें सम्मिलित हुए। बढ़िया रेशमी कफन में टैमी को लिपटाया गया। श्रीमती मांगे धहाड़े मार-मार कर विलाप कर रही थीं। पत्नी का यह दारुण दुःख देख कर श्री मांगे भी अपने आंसू न रोक सके।

श्रीमती मांगे और आगे सैर को न जा सकीं। रास्ते से हट कर वे भूरी चट्टानों और जंगली गुलाब की झाड़ियों को पार करती हुई ढाल की कड़ी सूखी घास पर चलने लगीं। तब सूरज आकाश में ऊंचे चढ़ आया था। एक छोटे से घास के मैदान में ओस पर पांवों के

निशान छोड़तीं, खोई हुई वे चल रही थीं। पांवों में उनकी साड़ी की किनारी ओस से भीग गई थी। सहसा वह चौंकी और फिर सीधी तन कर खड़ी हो गईं। उनके मुख पर दुःख और भय की मिश्रित भावनाएं उभर आईं। सामने टैमी की कब्र उखड़ी हुई थी। टैमी मुंह नीचे और टांगें ऊपर किए कब्र के बाहिर पड़ा हुआ था और उस पर लिपटाए हुए कफन का वहां कोई निशान नहीं था।

श्रीमती मांगे ने जोर से अपने हाथों से अपना सिर थाम लिया। बड़ी कठिनाई से उन्होंने अपनी रुलाई रोकी। उनका रंग चमेली की तरह सफेद हो गया था।

कल उन्होंने अपने हाथों टैमी को अन्तिम बार वह कीमती रेशमी वस्त्र लिपटाया था, और आज वह इस निर्जन स्थान में लावारिस-सा पड़ा था। श्रीमती मांगे की आंखों के कोर भीग गये और वह सुबकने लग पड़ीं।

जब यह दुखित समाचार श्री मांगे ने सुना तो उनका मुंह कस गया और आंखें सिकुड़ गईं। उसी क्षण नौकरों को कफन चोर का पता लगाने के लिए दौड़ा दिया गया मगर कफन चोर का कहीं अता-पता नहीं चला।

●

चीड़ और देवदार के पेड़ों से लदी पर्वत श्रेणियों से घिरा यह रमणीक गांव श्री मांगे के पितामह ने ही बसाया था। यहां पहले आस-पास की ढालों पर ही कोई इक्का-दुक्का घर थे। नीचे का मैदान तो बिल्कुल खाली पड़ा था। सम्भवतः तेज बर्फीली हवाओं के डर से

ही ऐसा हुआ हो। मगर इस धरती के भाग तब जागे जब श्री मांगे के पितामह ने पहली बार इस जंगल का ठेका लिया था। ढाल पर जंगल था और नीचे नदी बहती थी। बिना किसी जोखिम के उनकी सारी लकड़ी मण्डी तक पहुंच गई। इसके पश्चात् उन्होंने आस-पास के जंगलों के ही ठेके लिए। अपनी फर्म में काम करने वाले आस-पास के मजदूरों को उन्होंने वहीं बसा दिया। अपने रहने के लिए भी, नदी के ऊपर एक टीले पर काले पत्थर की खूबसूरत कोठी बनवाई। जिसे आज भी पर्वतवासी 'काला बंगला' कह कर ही पुकारते हैं। वहां के लोक गीतों में भी इस काले बंगले का वर्णन मिलता है :—

काला बंगला, मैहल जे सोभै
हां वे हां
बिच बलदी लो सुनैहरी
हां वे हां

(काले बंगले की शोभा महल की तरह है, जिस में (रात को) सुनहरी प्रकाश झलकता है)।

अपनी आयु के अन्तिम वर्ष, उन्होंने इसी अपने पवर्तीय बंगले में व्यतीत किए। पहाड़ी लोक नाच (कुड्डु) और लोक गीत भाखां के वे बड़े रसिया थे। रोज रात को उनकी कोठी के सामने कुड्डु का समां बन्धता। कानों के ऊपर छोटी-छोटी मींडियां (चोटियां) गुन्थे हुए जब पहाड़नें गातीं :—

काला बंगला मैहल जे सोभै
हां वे हां
बिच बलदी लो सुनैहरी
हां वे हां

उनके पश्चात् उनके बेटे ने इस काम को और भी बढ़ाया। बड़े-बड़े जंगलों के ठेके लिए। और अब उनके पौत्र श्री मांगे इस ठेकेदारी के साथ-साथ कई कम्पनियों के मालिक भी हैं। कारोबार इतना बढ़ गया है कि दम लेने की फुरसत नहीं है उनको, फिर भी जैसे-तैसे समय निकाल कर वे सपत्नी प्रत्येक वर्ष जुलाई मास को यहां आते हैं। काम-काज की निगरानी के साथ-साथ स्वास्थ्य लाभ भी हो जाता है।

जुलाई के अन्तिम शनिवार को इस ग्राम में मेला लगता है। दूर-दूर से पर्वतवासी रंग-बिरंगी पोशाकें पहने और चटकीले रंगों की डोगरा पगड़ियां बान्धे गाते-बजाते आते हैं।

इस वर्ष भी नियत समय पर मेला लगा। मगर श्रीमती मांगे की इस बार उसमें कोई रुचि नहीं थी। टैमी की याद उन्हें आज रुला रही थी। भरे मेले में टैमी उनके साथ घूमता। लोगों की अद्भुत पोशाकें देखकर भौंकता। वे उसे बड़े दुलार से डांटती "डौंट बी सिली टैमी।" टैमी दुम दबा कर उनके पैर चाटने लग जाता। मगर आज टैमी नहीं था। केवल उसकी यादें थीं। भारी मन से श्रीमती मांगे पति के साथ बालकनी पर खड़ी थीं। सामने मेल भरना शुरू हो गया था। कानों में उंगलियां ठोंसे शैले—नवयुवक" "भौंखां" अलाप रहे थे। एक ओर न जाने कब की बिछुड़ी दो सखियां अथवा सगी बहनें गले मिल रही थीं। उनकी गालों पर चमकते आंसू बालकनी से साफ दिखाई दे रहे थे मगर श्रीमती मांगे उधर नहीं, टीले के पार उस मैदान की ओर एकटक देख रही थीं, यहां उनके टैमी को दफनाया था। यहां से किसी ने उस पर डाला

नया कफन चुरा लिया था।

शाम को जब पहाड़ों के बोझल और ठण्डे साए घाटी पर उतर आए और मेला पूरी तरह भर गया, तब श्री मांगे पत्नी की बांहों में बांहें डाले मेले में उतरे। मेले में एक ठहराव आ जाता। जिधर वे निकल जाते, उधर ही पहाड़ी लोग बड़े आदर से सिर झुका कर उनका परम्परागत अभिनन्दन करते।

दूसरे दिन प्रातः मेला उजड़ जाता। श्री व श्रीमती मांगे भी उसी दिन नीचे आ जाते।

धीरे-धीरे दिन और सप्ताह बीतते गये। घाटी पर बर्फ गिरी, पिघली और फिर एक दिन आ पहुँचा, पर्वतवासियों की खुशियों और उमंगों का वही पर्व जुलाई मास का अन्तिम शनिवार।

श्री व श्रीमती मांगे बालकनी पर कुर्सियों पर बैठे मेला देख रहे थे। पर्वत श्रेणियों से घिरी घाटी के बीच रंग-बिरंगे कपड़े पहने पर्वत-वासियों का समूह सुमन-गुच्छ-सा दीख रहा था।

सहसा श्रीमती मांगे की भौहें चढ़ गईं। उनकी बड़ी-बड़ी आंखें क्रोध और घृणा से सिकुड़ गईं। क्या हुआ? श्री मांगे ने घबरा कर पूछा। श्रीमती ने कोई उत्तर नहीं दिया। केवल अपनी तर्जनी, पिस्तौल की नाली की तरह सामने की ओर तान दी।

सामने मेले में बारह-तेरह वर्ष की एक सांवली और भूरे बालों वाली लड़की बड़े मनोयोग से एक बन्जारे की दुकान की ओर एकटक देख रही थी। एक ढीला-ढाला रेशमी कुर्त्ता उसके दुबले-लचकीले बदन पर लहरा रहा था।

यही रेशमी-वस्त्र श्रीमती मांगे ने अपने टैमी को अन्तिम वार लिपटाया था।

श्री मांगे का मुंह कस गया। उन्होंने कठोर दृष्टि से उस लड़की की ओर देखा और बड़बड़ाए……हां……वही……ठीक वही…।

भरे मेले में जैसे भूंचाल आ गया।

श्री मांगे के एक नौकर ने उस लड़की की चोटी को बड़ी मुस्तदी से अपने साथ के चारों ओर इतना कस कर पकड़ा था कि लड़की का मुंह, पीछे की ओर खिच गया था। वह जोर-जोर से कराह रही थी—"हाए वापू, हाय मैं मरी"—"चल वापू की वच्ची। कमीनी, टुच्ची, वे-गैरत कुत्तिया।" नौकर उसे भीड़ में से घसीटता चला आ रहा था।" मेम साहब के कुत्ते का कफन चुराने वाली लुच्ची लफंगी…… ।"

मेले के मेली ऐसा रास्ता छोड़ते जा रहे थे जैसे कोई सवारी चली आ रही हो। जो सुनता कान पर हाथ धर देता।

"राम-राम, कुत्ते का कफन।"

"यह चुड़ेल न जाने इसे पहने कितनों से छुई होगी।"

"यह वे-हया चिप्पू डोम की लड़की है।"

"हद हो गई कैसा जमाना आ गया।"

वंगले की सीढ़ियां चढ़ते नौकर की पकड़ कुछ ढीली पड़ी। सहसा, लड़की ने जोर से एक झटका लिया और जाल से छूटे पंछी की भान्ति 'फुर' से भाग गई।

नौकर अपने दोनों हाथ उठा कर चिल्लाया—"पकड़ो-पकड़ो—।"

मगर कफन पहने हुए उसे कौन छूता ? लोगों ने जैसे आती बार रास्ता छोड़ा था ठीक वैसे ही अब भी छोड़ दिया। देखते-देखते लड़की वहां से जंगली हिरनी की तरह गायब हो गई।

लड़की तो बच कर भाग गई मगर उसका बूढ़ा बापू-चिप्पू डोम तो कहीं भाग कर नहीं जा सकता था। दो नौकरों ने उसकी बांहों को उल्टा बान्धकर श्री मांगे के आगे लाकर डाल दिया।

बूढ़ा भयभीत होकर थर-थर कांप रहा था। श्री मांगे गुस्से कांप रहे थे। उनके माथे की नसें नन्हीं मछलियों की तरह तड़प रही थीं। उन्होंने अपना कोड़ा सटकारा—'क्यों, वे उल्लू के पट्ठे ?" एक भर-पूर लात उसकी पीठ पर जमाते हुए उन्होंने पूछा—"साले चिप्पू उस रेशमी कुर्त्ते का कपड़ा तेरे पास कहां से आया था ?"

बूढ़ा चिप्पू घुटनों के बल खड़ा चुपचाप एक अत्यन्त थकान से सामने के पहाड़ों की ओर देख रहा था, मानों उसके इस अपमान की पीड़ा से ही उनकी बर्फ पिघल रही हो।

मेला मौन था। मेली बंगले के इर्द-गिर्द एकत्रित हो गये थे। उनके चेहरे सहमे हुए थे।

श्री मांगे ने फिर अपना कोड़ा सटकारा—"बोल साले, कफन चोर। अब क्यों चुप हो गया ?"

चिप्पू एक बार खड़ा होकर फिर वहीं ढेर हो गया। श्री मांगे के होंठ कांप रहे थे और उनका शरीर क्रोध से जकड़ गया था। एक ठोकर मार कर वे चिल्लाए—"उल्लू के पट्ठे, बोलता क्यों नहीं ?"

पसीने की बड़ी-बड़ी बून्दें चिप्पू के दुबले और बीमार मुंह पर उभर रही थीं, फिसल रही थीं, उसने अपनी भीगी हुई आंखें धीरे-धीरे उठाईं—"मालिक, मुझे माफ कर दो। मेरे बच्चे तो हमेशा नंगे ही रहते आए हैं, मगर लड़की को नंगा रखने की एक उम्र होती है, एक हद होती है। मालिक, मेरी रूपा उस हद से पार चली गई थी।"

"साले, ड्रामा करता है। तुम पहाड़ियों की रग-रग को मैं पहचानता हूं। मेरे पास उसका इलाज भी है।" इतना कह कर उन्होंने उसे कोड़े से पीटना शुरू कर दिया।

उसी समय ढाल से लुढ़कते पत्थर की तरह कहीं से दौड़ती चिप्पू की लड़की वहां आ गई। उसकी सांस फूली हुई थी। ग्लानि, क्रोध, घृणा और लांछन की मिली-जुली भावनाओं से उसका सांवला रंग कांसे की तरह तमतमा रहा था। लड़की के अप्रत्याशित ढंग से वहां आने पर सभी स्तब्ध रह गये। केवल बालकनी के जंगले से सटा हुआ बूढ़ा चिप्पू धीरे-धीरे कराह रहा था। आस-पास के चीड़ों और देवदारों के पेड़ एक मर्मस्पर्शी स्वर में मातम कर रहे थे।

प्रतिशोध में जलती आंखों से लड़की ने श्री मांगे की ओर देखा और फिर तेजी से श्रीमती मांगे की ओर मुड़ कर अपना रेशमी कुर्ता इस तरह हड़बड़ा कर उतारने लगी जैसे उसमें आग लग गई हो। कुर्ते को श्रीमती मांगे की ओर फेंक कर उसने अपने सीने पर हाथ बान्धे दृढ़ता से कहा—'यह लो, अपना कफन और मेरे बापू को छोड़ दो।"

घाटी ने घनी धुंध में मुंह छिपा लिया और नंग-धड़ंग लड़की औंधे मुंह पड़े अपने बापू से चिमट कर, सिसक-सिसक कर रोने लग पड़ी।

कहानी की कहानी

जिस दिन कहानीकार ने एक कहानी प्रतियोगिता का समाचार पढ़ा था, उसी दिन से उसकी दशा उस शिकारी-सी हो गई थी, जो शिकार की तलाश में वन-खण्ड में भटकता फिर रहा हो, मगर मन-मर्जी का शिकार उसके हाथ न लगे। कहानीकार मिलने मिलाने वालों के चेहरों को बड़ी पैनी दृष्टि से देखता, डायरी में लिखी छोटी-मोटी घटनाओं को जोड़ता-तोड़ता, इसी तरह कई दिन बीत गये, मगर बात नहीं बनी। अन्त में वह निराश होकर ऐसे बैठ गया जैसे कुक्कड़ मुर्गी। तभी पत्नी ने द्वार से झांक कर कहा—"सुनते हो।"

हमारे कहानीकार ने बाईं आंख दाब कर और दाहिनी भौंह चढ़ा कर ऐसे देखा जैसे पहाड़ी बकरा भिड़ने से पहले अपनी अगली दो टांगें उठा कर दाव भरता है। पत्नी ने वहीं से घुटी हुई आवाज में पूछा—"आज फिर, कहीं कहानी तो नहीं लिखी जा रही ?"

कहानीकार ने ठोडी को तोते की चोंच की तरह, छाती से छू कर कहा, "हूं"।

पत्नी ने एक गहरी सांस भरी, और लौट गई। कहानीकार ने खट से द्वार बन्द करके सांकल चढ़ा दी और सिर पर हाथ रख कर, प्रेम, वियोग, समाज, शराब, रिश्वत और सिफारिश जैसे विषयों पर

कहानी के जाल बुनने लगा। मगर इन जालों में वह खुद ही उलझ के रह गया। जैसी अछूती कहानी वह चाहता था वैसी हाथ न लगी। हड़बड़ा कर उसने द्वार खोले, और बाहिर निकल गया।

शहर से बाहिर, एक सुनसान-सी पुलिया पर जा कर वह बैठ गया। सिगरेट सुलगा कर होठों से लगाई ही थी, कि सुनाई दिया—"मास्टर जी, नमस्ते।"

देखा, सामने दोनों हाथ बांधे प्रेम खड़ा था। एक वर्ष पहले वह जिस पहाड़ी स्कूल में अध्यापक था, प्रेम उसी स्कूल का एक मेधावी छात्र था।

"भई, तू यहां कहां ?"

अपरिचित शहर में, व्याकुल, निरीह बालक ने आंखें झुका लीं।

"तू घर से कब आया ?"

घर का नाम सुनते ही उसकी आंखें भर आईं—"कल आया था, मास्टर जी ! अम्मा की अभी वही हालत है।"

सहसा, कहानीकार की आंखों के सामने ढाल पर खड़ा, वह अकेला और टूटा-फूटा घर घूम गया जिसे प्रति दिन, सायं सैर जाते हुए वह देखा करता था। दूर से उसे वह एक समाधि-सा लगता। उसके ऊपर एक घनी और लम्बी चीड़ के पेड़ों की श्रेणी खड़ी थी। ढाल के नीचे पनचक्की की घुमावदार पानी की नाली के साथ-साथ संकरी पगडण्डी पर खड़ा वह देखता, डूबते सूर्य की फीकी धूप ढाल पर फैली हुई होती। घर के आंगन से धुएं की एक टेढ़ी-मेढ़ी लकीर चीड़ की फुनगियों तक ऊंची उठ रही होती। तभी उसके कानों में प्रेम की

आवाज़ सुनाई देती—"मास्टर जी ओ ऽ ऽ ऽ नमस्ते ए'''ए'''।" यह ध्वनि सामने की खड़ी पहाड़ी से टकरा कर उस सारे वातावरण में गूंज जाती। कहानीकार, देखता उसी घर के आंगन में आड़ू के पेड़ के पास प्रेम हाथ बांधे खड़ा होता, पास ही उसकी बीमार मां खटिया पर लेटी होती।

यह सब देख कई बार कहानीकार के मन में आता कि इस वातावरण को लेकर वह कोई कहानी लिखे। एक बीमार स्त्री, अनाथ-सा लड़का, परन्तु यह सब बहुत हो चुका है बीसियों कहानियां लिखी गई हैं इस विषय पर। बीमार स्त्री के स्थान पर एक दीर्घकाय और आकर्षक उभारों वाली युवती, उसकी कल्पना में उभरती। यही सब सोचता वह बावली तक जा पहुंचता। यह बावली उसकी सैर की अन्तिम सीमा थी। बावली में हाथ-मुंह धोकर, वह दो घूंट पानी अवश्य पीता। बावली से थोड़ा नीचे से, पनचक्की की 'गर्र-गर्र' ध्वनि उसे बड़ी अच्छी लगती। पनचक्की के बाहिर, एक बड़े पत्थर पर चक्की वाला बूढ़ा बैठा, हुक्का गुड़गुड़ा रहा होता। बारीक आटे की धूल उसके मुंह और सिर पर जमी होती। धूल से अटा पड़ा वह बूढ़ा उसे किसी दूसरे लोक का प्राणी लगता।

जब वह वहां से लौटता तब अन्धेरा आर-पार की ढालों को समतल कर चुका होता, ढाल की बगल में टंगा वह घर अन्धेरे में डूब चुका होता, वह सोचता—ऐसे समय उस बीमार स्त्री को यदि कुछ हो जाए तो अकेला प्रेम क्या करेगा।

प्रेम चुपचाप उसके पास खड़ा था।

"प्रेम, ऐसी अवस्था में तुम्हें अपनी मां को अकेले नहीं छोड़ना

चाहिए ।" जेब से एक कागज निकाल कर प्रेम ने कहा—"कस्बे के डाक्टर ने कहा है, अगर शहर से यह टीके न आए तो अम्मां ... ।" आंखें पोंछ कर उसने कहा—"मास्टर जी, यदि कोई नौकरी या मजदूरी मिल जाती तो अम्मां के लिए टीके...... ।"

जिस कहानी की तलाश में कहानीकार इतने दिनों से परेशान था, उसे इस तरह प्रत्यक्ष हाथ आ जाने पर उसका मन प्रसन्नता में हुमकने लगा—"मगर प्रेम तुम्हारी पढ़ाई का क्या होगा, भई, तुम पढ़ाई में बहुत तेज थे।"

"मास्टर जी, अम्मां ठीक हो जाए तो पढ़ाई भी करलूंगा...... ।"

कहानीकार अपनी कहानी में डूब चुका था—"कितने उपजाऊ मस्तिष्क गरीबी की राख में जल-भुन जाते हैं। देश और जाति का इससे बढ़ कर और क्या नुक्सान होगा।

घर पहुंचते ही, कहानीकार ने पत्नी से खुश होकर कहा—"भई, एक प्याला चाए मिलेगी ?"

आठ दिन के बाद पति के मुंह से ये मीठे बोल सुन कर पत्नी गद-गद हो गई। हंस कर बोली "जब कभी आप हंस कर बोलते तो कुछ अजब-सा लगता है "

पत्नी का व्यंग्य शायद कहानीकार ने नहीं समझा आज एक बहुत बढ़िया प्लाट मिला है "कहां, गान्धी नगर में ?" पत्नी ने प्रसन्नता से पूछा। "नहीं, भई, वह प्लाट हमारे भाग्य में कहां। कहानी के प्लाट की बात कह रहा हूं। अचानक ही प्रेम से भेंट हो गई थी ।"

पत्नी ने पूछा—"कौन, प्रेम ?"

"नई कहानी का नायक।"

"कहानी, कहानी, कहानी! इस से बाहिर कोई हाड़-मांस का प्राणी भी आप की दृष्टि में है या नहीं।"

शायद कोई और दिन होता तो कहानीकार माथे पर जोर से हाथ मार कर कहता—भगवान, किसी साहित्कार को तुम जैसी फहड़ पत्नी न दे···। परन्तु आज उन्होंने इसे सुना-अनसुना करके बड़े स्नेह से समझाते हुए कहा—"प्रेम कभी मेरे पास पढ़ता था। बड़ा मेधावी छात्र था बेचारा। बीमार मां को अकेले छोड़ कर यहां मजदूरी करके, उसके लिए दवाई आदि लेने आया है। मगर उस छोटे-से लड़के के करने लायक यहां क्या मजदूरी है? शायद बिना कुछ खाए-पिए कल से घूम रहा है।"

सुन कर पत्नी की आंखें सजल हो उठीं—"आप ने उसे घर क्यों नहीं लाया? यहां उसका और कौन होगा। न जाने, पीछे बेचारी मां की क्या दशा होगी। आप का मन न जाने किस धातु का बना है।"

कहानीकार यह सुन कर हंस पड़ा—"तू बड़ी भोली है। तू समझती है, इस शहर में केवल एक प्रेम ही है, जो निर्धन है, भूखा है, और असहाय है। ऐसे पात्रों को अपनी रचनाओं के द्वारा जनता के सामने लाना ही मेरे लिखने का उद्देश्य है।"

पत्नी ने पूछा—"इस से अधिक कुछ भी नहीं?"

कहानीकार ने असमर्थता में सिर हिला दिया—"नहीं।"

एक ही बैठक में कहानी को लिख-लिखा कर, कहानीकार ने जब

पत्नी को यह नई कहानी सुनाई तो वह चुपचाप निरपेक्ष भाव से शून्य में जैसे कुछ ढूंढती रही।

"क्यों, अच्छी नहीं लगी?"

"प्रेम, आज भी भूखा ही होगा।" पत्नी ने धीमे से कहा।

—"मैं उस की नहीं, कहानी की बात पूछ रहा हूं"—खीझ कर कहानीकार ने कहा। "मगर आप की कहानी से उसकी भूख तो नहीं मिट सकती। उस की बीमार मां को दवाई तो······पूरी बात सुने बिना ही, कहानीकार उठ कर चला गया।

●

प्रेम का क्या हुआ? वह अभी इसी शहर में है अथवा गांव लौट गया? उस की मां की दवाई का क्या हुआ? इन प्रश्नों को छोड़िए।······मगर उस पर लिखी गई कहानी अवश्य पुरस्कृत हुई। यश और मान के साथ-साथ एक हजार नकद पुरस्कार भी मिला कहानीकार को।

कहानीकार का घर प्रशंसकों से भरा हुआ था। जिन्होंने कभी उस की कोई कृति भी पढ़ी न थी आज वे भी मुक्त कंठ से उसकी तारीफ कर रहे थे। वाह-वाही इस समुद्र के किनारे खड़ी, कहानीकार की पत्नी, आज भी उस अनदेखे लड़के को याद कर रही थी जो कभी इस शहर में आया था, और जिस की मां दूर किसी पहाड़ी-गांव में अकेली, असहाय और बीमार थी।

शाम को इसी खुशी में, कुछ मित्रों के संग कहानीकार सिनेमा

चले गये। फिल्म अभी शुरू नहीं हुई थी। शुरू थी, वही कहानी की सुखद चर्चा। अचानक कहानीकार को सुनाई दी एक परिचित-सी आवाज़—"मास्टर जी नमस्ते!" कहानीकार भौंचक रह गया सामने, प्रेम खड़ा था—हाथों में चाय की ट्रे पकड़े हुए। अब उसके मासूम चेहरे पर ज़ोर-ज़बरदस्ती से लाई हुई एक चतुराई टपक रही थी, जैसे कोई पीड़ा छिपा कर मुस्कराने का प्रयत्न कर रहा हो। ट्रे में चाय के गिलास डगमगा रहे थे मगर उन से भी अधिक डगमगाने लगा था कहानीकार का अपना मन। दो क्षण पहले की सारी खुशी न जाने कहां लोप हो गई थी। इनामी कहानी के नायक का परिचय, मित्रों से कराने के लिए उसने मुंह खोला मगर वह खुला का खुला ही रहा। उसकी जीभ, उस सांप की भान्ति सहमी हुई थी, जिस की वाम्वी के वाहिर कोई पहाड़ी नेऔला अपनी गोल-गोल सुर्ख आंखें खोले बैठा हो।

"मास्टर जी, चाय ले आऊं?"

"हां-हां, ले आओ।" कहानीकार ने बिना उसकी ओर देखे, कहा।

इस की मां का क्या हुआ? इस की पढ़ाई का क्या होगा? क्या इस की यही मंज़ल है? कहानीकार का मन चंचल वच्चे की तरह कई प्रश्न पूछने लगा। मगर, इन सब प्रश्नों के उत्तर कौन देता। केवल चारों ओर से पापड़, चाय और सेंवईयां बेचने वाले लड़कों की आवाज़ें आ रही थीं।

तभी साफ-सुथरे पिर्च-प्यालों में चाय ले आया प्रेम। चाय की चुस्की लेते एक मित्र प्रेम से 'इन्टरव्यू' लेने लगे—"एक गिलास चाय वेचने पर तुम्हें कितना मिलता है?

"एक गिलास पीछे, एक पैसा।"

"दिन में कितने गिलास बेच लेते हो ?"

"गिलास ?" प्रेम ने बड़े व्योपारी ढंग से आंखें सिकोड़ कर कहा—यह तो फिल्म पर है, यदि अच्छी फिल्म हो तो सौ गिलास बिक जाते हैं, नहीं तो बस यही पच्चास-साठ।"

"यह तो अन्याय है, एक गिलास पीछे केवल एक पैसा।" फिर कहानीकार की ओर मुंह करके कहा—"इन लड़कों पर भी यार, कुछ लिख मारो। कहानीकार चुप रहा। चाय का एक-एक घूंट उसे नीम के काढ़े से भी कड़वा लग रहा था।

"नहीं जी, पैसे नहीं।" प्रेम देने वाले मित्र से कह रहा था—"नहीं जी, यह कैसे हो सकता है।" फिर कहानीकार की ओर इंगत करके उसने कहा—मैं इन से पढ़ा हुआ हूं। जन्म चाहे, मां-बाप देते हैं, मगर इन्सान तो गुरु ही बनाते हैं......। प्रेम बोलता जा रहा था कहानीकार को लग रहा था टी-पाट से गर्म-गर्म चाय की बून्दे कोई उसके कान में डाल रहा है।

रोशनी बुझ गई, खाली पिर्च-प्याले उठाए, प्रेम बैठे हुए लोगों के पैरों में से रास्ता टटोलता चला जा रहा था। कहानीकार उसी ओर टुकर-टुकर देख रहा था—अन्धेरा सिर्फ अन्धेरा।

अब अन्धेरे में केवल पिर्च-प्यालों की सफेदी सफेदी ही उसे दिखाई दे रही थी। उसे लगा जैसे, उसके मन में कहीं इतनी सफेदी भी नहीं है, वहां तो इससे भी घुप अन्धेरा है।

आदेश और उपदेश

मेज़ पर पुस्तकें पटक कर वे एक दूसरे की ओर देखने लगे। वह ठीक से समझ नहीं पा रहे थे कि उन्हें क्या हो रहा है। किसी भी काम में उनका मन नहीं लग रहा था। दोनों बड़े मेधावी छात्र थे। अपने स्कूल में हमेशा फर्स्ट आते। कल से शशमाही परीक्षा शुरू हो रही थी। परन्तु उनका मन उच्चाट था। अपने पिता के कड़े नियंत्रण से वह ऊब गये थे। सच्चाई, ईमानदारी, आदर्श और सच्चित्रता आदि विषयों पर भाषण सुन कर उनके कान पक गये थे। वास्तव में उनके पिता डाक्टर खोसला ने उनके सुन्दर भविष्य के लिये ही पुन: विवाह नहीं किया था। डाक्टर और इन्जीनियर तो सभी बन रहे हैं। इन से ऊपर, बहुत ऊपर वे अपने बच्चों को पहुँचाना चाहते थे। शहर के प्रसिद्ध अंग्रेज़ी स्कूल में उन्हें पढ़ाया जा रहा था। क्या मजाल जो मुहल्ले के किसी लड़के के साथ ये बात तक कर जाएं। डाक्टर खुद भी उनसे केवल काम की ही बात करते और वह भी अंग्रेज़ी में। असल में डाक्टर खोसला का असूल था कि बच्चों को खिलाओ-पिलाओ जमाई की तरह और देखो कसाई की तरह। इसी लिए दोनों बेटे पिता के 'कसाईपन' से बुरी तरह भयभीत थे और उन्हें बरबस अपनी मां की याद सताती।

अपने पढ़ने के कमरे से उठ कर वे दोनों अपनी मम्मी की तस्वीर के पास खड़े हो गए—"मम्मी! तुम सब कुछ देख रही हो, डैडी हम

पर कितना जुल्म कर रहे हैं। हर समय गुस्से से उनका मुंह कसा रहता। हमारी ओर इस तरह देखते हैं जैसे हमने कोई बुरा काम किया हो। अम्मी, तुम हमें हर रात को सपने में दिखाई देती हो। क्या तुम डैडी के सपनों में नहीं जाती? क्या तुम भी हमारी तरह उन से डरती हो? मगर मम्मी, पलीज़ हमारी खातिर एक बार डैडी के सपने में जाओ और उनसे हमारी सिफारिश कर देना कि वह हमें हंस कर बुलाया करें। कभी-कबार हम से भी प्यार किया करें। महीने में एक दिन तो हमें पिकनिक पर जाने की आज्ञा दे दिया करें।

सहसा डाक्टर साहिब आ गये—"तुम्हें कितनी बार मना किया है कि हिन्दी में बात-चीत मत किया करो?" नन्हें ने कहा, "लेकिन डैडी, मम्मी तो अंग्रेज़ी नहीं जानती। डाक्टर साहिब झुंझला कर बोले—"ज्यादा बात-चीत नहीं। कल तुम्हारी शशमाही परीक्षा शुरू हो रही है। उसकी भी कुछ फिक्र है?" चलो अपने स्टडी-रूम में।

मेज़ पर पुस्तकें पटक कर वे एक दूसरे की ओर देखने लगे।

परीक्षा समाप्त हुई और इस बार प्रिंसिपल ने दोनों बच्चों की उत्तर-पुस्तिकाएं डाक्टर साहिब को भेज दी थीं। डाक्टर साहिब अपनी बैठक में बैठे उन्हें पढ़ रहे थे। क्रोध से उनका मुंह कसता जा रहा था। परीक्षा में एक प्रश्न पूछा गया था कि साईकिल ले देने के लिये अपने पिता जी को एक पत्र लिखो। नन्हें ने इस प्रश्न का उत्तर यूं लिखा था—मेरे पिता जी स्वयं दो मील पैदल चल कर हस्पताल जाते हैं। ऐसी स्थिति में उनसे साईकिल की मांग करनी उचित नहीं और फिर जम्मू की सड़कों पर साईकिल चलाना तो मौत को बुलावा देना है। इसी प्रश्न का उत्तर बड़े ने ऐसे लिखा था—मेरे पिता जी के

लिये काला अक्षर भैंस बराबर है। इस लिए पत्र लिख कर उन से साईकिल की मांग करनी उचित नहीं। मैं आप को विश्वास दिलाता हूं कि मैं आज ही घर जाकर उनसे साईकिल ला देने को कह दूंगा और जब तक वे उसे नहीं लाते मैं भूख-हड़ताल जारी रखूंगा। दूसरा प्रश्न सच्चाई पर एक प्रस्ताव था। नन्हें ने अपना प्रस्ताव यूं शुरू किया था—हम बच्चों को सच्च इस लिए बोलना चाहिए चूंकि बड़े लोग प्राय: झूठ बोलते हैं और यदि हम भी सच्च नहीं बोलेंगे तो बेचारा 'सच्च' शब्द-शब्दकोष से ही मिट जाएगा मैं पहले लिख चुका हूं कि बड़े झूठ बोलते हैं उसके प्रमाण के लिये मैं अपने पिता जी का उदाहरण देता हूं—वह हमें हमेशा सच्च बोलने को कहते हैं और स्वयं सदा झूठ बोलते हैं। जब कोई गरीब आदमी उनके पास दवाई लेने आता है तो वह नौकर से कहलवा देते हैं कि डाक्टर साहिब घर पर नहीं हैं। हम समझते थे कि हमारे मास्टर जी सच्चे आदमी होंगे मगर एक दिन यह भ्रम भी दूर हो गया। एक दिन प्रिंसिपल साहिब ने हमारी श्रेणी में आकर मास्टर जी से पूछा कि उन्होंने हमें कितने पाठ पढ़ाए हैं। मास्टर साहिब ने बेखटके उत्तर दिया कि पन्द्रह पाठ वे हमें पढ़ा चुके हैं। मगर भगवान जानता था उन्होंने हमें सिर्फ दस पाठ पढ़ाए हुए थे। दूसरे दिन मैंने और नन्हें ने प्रातः जल्दी स्कूल जाकर वे सभी माटो और चार्ट उच्चाट कर बाहिर फेंक दिए जिन पर लिखा था—Do not tell a lie, झूठ बोलना पाप है और हमेशा सच्च बोलो। मास्टर जी ने आकर पूछा—चार्ट कहां गए? मैंने खड़े होकर उत्तर दिया—"सर, वे उड़ गये। उन्होंने पूछा—कैसे? मैंने उत्तर दिया—कल एक आंधी आई थी और अपने

साथ सब कुछ उड़ा कर ले गई। मास्टर जी कुछ नहीं समझे। मैंने उनसे सच्ची बात कह दी और सच्च बोलने वाले को सदा दण्ड मिलता है। इस लिए हम दोनों भाईयों को भी मिला। नन्हें ने उत्तर पुस्तिकाओं में एक निजी-पत्र भी लिखा था—यदि मैं चाहता अपने सामने बैठे हुए लड़के की आसानी से नकल कर सकता था। परन्तु मैं भी महात्मा गान्धी की तरह नकल करना बुरा मानता हूं। आशा है मेरी भलमानसी को देखते हुए आप विशेष कृपा करेंगे और यदि मैं फेल हो गया तो मेरे पिता जी मुझे गोली मार देंगे (यह चेतावनी उन्होंने मुझे पहले से दे रखी है) आप जानते हैं दूसरे को गोली से मारने वाला आदमी भी फांसी पर चढ़ जाता है······फिर घर के लोग कितने दुःखी होंगे। मगर यह दुर्घटना आप की दया से टल सकती है, मैं फिर आशा करता हूँ कि मामले की गम्भीरता को देखते हुए आप नम्बर देने में कन्जूसी नहीं करेंगे।

डाक्टर साहिब ने जोर से मेज पर मुक्का मार कर नौकर को बुलाया और आज्ञा दी—"नन्हें और बड़े को बुलाओ और स्वयं वे फिर उत्तर—पुस्तिकाएं देखने लगे। समाचार पत्र कापियों किताबों पर जिल्दें चढ़ाने के काम आते हैं। इनसे आग भी सुलगाई जाती है। सब से बढ़ कर इनकी रद्दी बेच कर पैसे भी खरे किए जा सकते हैं।"

सर्वनाम और उसके भेद बड़े ने यूं लिखे थे—सर्वनाम सर्वनामी भगवान को कहते है। उसके कई एक भेद हैं जो उसके भक्त ही भली प्रकार जानते हैं क्योंकि भेद-भाव वही उत्पन्न करते हैं।

दूसरे दिन डाक्टर साहिब ने बच्चों के लिए ट्यूटर नियुक्त कर दिया। उन्होंने आते ही बच्चों से पूछा—"बच्चो, क्या पढ़ना है ?"

"जो आप पढ़ा देंगे।"

"इतिहास आता है ?"

"जी हां" दोनों इकट्ठे बोले।

"शेरशाह सूरी कौन था ? और उसे शेरशाह क्यों कहते हैं ?"

नन्हें ने उत्तर दिया—"शेरशाह की शेरों के साथ बड़ी शत्रुता थी तब वह एक चरवाह था और शेर रोज उसकी भेड़ें खा जाया करता था। अन्त में तंग आकर उसने शेरों से बदला लेने की ठानी (शेर उन दिनों सरकसों में नहीं, जंगलों में रहते थे) उसने चुन-चुन कर शेरों को मार डाला। इस लिए लोग उसे चिढ़ाने के लिये शेरशाह कहते थे।"

उत्तर सुन कर मास्टर जी चकरा गये। उन्होंने दूसरा प्रश्न किया—"ईस्ट इण्डिया कम्पनी के विषय में तुम क्या जानते हो ?" इस बार बड़े ने उत्तर दिया—सर, यह कम्पनी पहले घूम-घूम कर नौटंकी का खेल दिखलाया करती थी। भारत में अपनी किस्म की यह पहली नौटंकी थी ; आज कल यह बम्बई में फिल्में बनाती है। इस की अधिकतर फिल्में रुग्त होती हैं।

मास्टर जी ने माथे पर हाथ मार कर एक प्रश्न और पूछा—"लार्ड मिण्टो द्वितीय ने कौन-कौन से सुधार किये ?"

नन्हें ने कहा—"सर, मिण्टो की कहानियां हमारे पिता जी हम से छुपा कर पढ़ते हैं। सुना है इन्होंने अपनी कहानियों द्वारा कई एक सुधार किये हैं। यह बड़े मनमौजी जीव थे इसी लिए यार लोग इन्हें

प्रेम से लार्ड मिण्टो कहते थे। यह मिण्टगुभरी के रहने वाले थे और मिण्ट में कह देते थे।"

दूसरे दिन ये मास्टर जी पढ़ाने नहीं आए। डाक्टर साहिब एक दिन नये ट्यूटर को ले आए। ट्यूटर ने भी आते ही दोनों से पूछा—"क्या पढ़ना है ?"

"जो कुछ आप पढ़ायेंगे।"

"साईंस आती है ?"

"हां जी !" दोनों ने सस्वर उत्तर दिया। मास्टर जी ने पूछा—"पानी के स्वाभाविक और रासायनिक गुण क्या हैं ?"

"सर"—बड़े ने कहना शुरू किया—"पानी में कई एक गुण हैं जैसे पानी को दूध में मिलाया जाए तो वह चुपचाप दूध बन जाता है।"

"बस, बस.........जुगराफिया आता है ?"

"हां जी !"

"लंका शायर कहां है और यह क्यों प्रसिद्ध है ?"

नन्हें ने उत्तर दिया—"सर, लंका में यह शायर अर्थात् कवि तब पैदा हुआ था जब रामचन्द्र जी लंका पर विजय प्राप्त करके लौटे थे। इस शायर ने बहुत से ग्रन्थ लिखे हैं। इसी लिए लंका के लोगों ने इसके नाम पर एक नया शहर बसाया जिस का नाम लंका शहर है।" सुन कर मास्टर जी को चक्कर आ गया। मगर उन्होंने एक प्रश्न और पूछा—"वनस्पति जगत् के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?"

नन्हें और बड़े अपने हाथ जल्दी-जल्दी हिलाने लगे। मास्टर जी ने बड़े को उत्तर देने को कहा।

"सर, जिस समय इस धरती पर असली अर्थात् शुद्ध घी की उत्पति प्राय: समाप्त हो गई तो वनस्पति घी का आविष्कार हुआ।"

दूसरे दिन यह मास्टर जी भी नहीं आए। डाक्टर साहिब अब पूरी तरह निराश हो चुके थे। उनके सपनों का महल उनकी आंखों के सामने ताश के पत्तों की तरह गिर चुका था। कितनी सुखद आशायें उन्होंने संजोई थीं। इसके लिए उन्होंने अपना सब कुछ बाजी पर लगा दिया था अत: वे भी बाजी हार चुके थे।

उन्हीं दिनों नन्हें और बड़े के मामा यानी डाक्टर साहिब के साला साहिब वहां आए। स्थानीय कालेज में वे मनो-विज्ञान के लैक्चरं नियुक्त हुए थे। डाक्टर साहिब ने अपना सारा दुखड़ा उन्हें कह सुनाया। सुन कर वे ज़ोर से हंस दिए—"जीजा जी, आखिर आप फिर ठहरे हाड़-मांस के डाक्टर। मगर हाड़-मांस के अन्दर एक और भी वस्तु होती है। मुझे तो लगता है नन्हें और बड़े दोनों योग्य हैं। कोई बुद्धू लड़का उनकी तरह की शैतानी कहां कर सकता है। डाक्टर साहिब ने कहा—"यह तुम क्या कह रहे हो, मैं समझा नहीं।

"कुछ दिन प्रतीक्षा करें। इस बात का उत्तर आप को स्वयं मिल जाएगा।"

इसके पश्चात् वे अपने भांजों के स्टड्डी-रूम में चले गये।

"मैंने आप लोगों की बड़ी तारीफ सुनी है। सचमुच ही तुम बड़े समझदार लगते हो।" फिर उन्होंने पूछा—"यह कौन-सी किताब पढ़ी जा रही है?"

"हिस्ट्री।"

"तुम्हारे विचार में मुगल-वंश का प्रसिद्ध बादशाह कौन है ?"

"मामा जी, मुगल-वंश का सब से प्रसिद्ध बादशाह अकबर है जिसे आज कल मुग़ल-ए-आज़म भी कहते हैं। इनका शीश महल बम्बई में है। इन का बड़ा रोब-दाब था। अनारकली का सारा जीवन इन्होंने दुःखी कर दिया था।" सुन कर मामा हंस दिए—"भाई तुम लोग बड़े समझदार शैतान हो।"

"नहीं जी हम सिर्फ शैतान नहीं। यदि यकीन न आए तो पिता जी से पूछ लीजिए। इसी लिए घर में कोई हमारी सुख-सुविधा पर ध्यान नहीं देता। जो आता है उपदेश देता है अथवा आदेश। जैसे हम आदमी नहीं सरकस के जानवर हों। यदि हमें कोई ढंग से नहीं बुलाता तो हम ढंग से बात क्यों करें ?"

"मैं तुम लोगों की नाराज़गी का कारण समझ रहा हूं, और तुम्हारा ही पक्ष ले रहा हूं।"

"तुम्हारे जैसे योग्य बालकों का पक्ष भला कौन नहीं लेगा।"

नन्हें और बड़े हैरान थे। आज पहली बार किसी ने उनसे प्यार और प्रेम से बात-चीत की थी।

अब प्रति-दिन वे दोनों अपने मामा से पढ़ते। एक महीने में ही स्कूल के टीचर और स्वयं डाक्टर साहिब बच्चों का यह काया-कल्प देख कर चकित रह गये। वे मान गये कि लड़के अब स्याने हो गये हैं।

मगर वे तो पहले भी स्याने थे।

राका

राका बोलती जा रही थी···। मनोहर सामने कुर्सी पर बैठा एकटक उसकी ओर निहार रहा था। राका को लगा, मनोहर का ध्यान उसकी बातों की ओर न होकर, उसके माथे पर, पंखे की हवा में झूलती लट पर केन्द्रित है। कोई और दिन होता तो शायद वह मनोहर की इस नज़र पर खुश ही होती, मगर आज वह उसका पूरा ध्यान अपनी ओर ही आकृष्ट करना चाहता थी। दो-तीन बार उसने लट को हटा कर बालों में सहलाया। परन्तु अपनी जिद्द पर आए हुए बच्चे की तरह, लट बार-बार उसके माथे की बिन्दी पर झुल जाती। आखिर, राका ने उसे अपनी मुट्ठी में काबू कर लिया। मनोहर को जो इस खेल को बड़ी दिलचस्पी से देख रहा था—लगा राका ने मुट्ठी में एक तितली कैद कर ली हो।

अब, राका माथे पर मुट्ठी बांधे, कहते जा रही थी—"आखिर कब तक हम यों होटल में पड़े रहेंगे। यहां बैरों से लेकर मैनेज़र तक हमें सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। वह बैरा जिस का एक दांत सोने का है, कल मुझ से कह रहा था, कि जिस कमरे में हम रह रहे हैं, कभी इसमें एक लड़की, किसी लड़के के साथ ठहरी हुई थी······और आज वह एक प्रसिद्ध अभिनेत्री है······। इतना सुना कर वह खुद ही 'हो' 'हो' करके हंस पड़ा था। ये लोग समझते हैं कि मैं भी तुम्हारे साथ इसी उद्देश्य घर से भाग कर आई हूं।"

मनोहर ने कहा—"ये सब मामूली बातें हैं। होटल के इन लोगों का संसार हमारे जैसे ग्राहकों की चारों ओर बन्धा हुआ होता है। नये आने वाले ग्राहकों के विषय में ये लोग अपने ढंग की धारणाएं बना लेते हैं। ......हमें इन पर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए... ।"

मनोहर का उत्तर सुन कर राका चुप रही। अपने चारों ओर का वातावरण उसे खोखला दिखाई दे रहा था। एक घुटन वह अनुभव करती।

हाथ बढ़ा कर राका खिड़की बन्द करने लगी। मनोहर ने उसकी बांह पकड़ कर कहा—"खुली रहने दो।"

राका ने हाथ खींच लिया।

"यह कोई भला आदमी नहीं दीखता।"

"कौन ?" मनोहर ने पूछा।

"वही, सामने।"

मनोहर ने उचक कर बाहिर देखा ·· ··· अरे ! यह तो ठाकुर साहिब हैं। कल ही मैनेजर ने इन से मुझे मिलाया था। आदमी दिलचस्प हैं। राका बोली—"मुझे तो यह कोई भला आदमी नहीं लगता। आंखें जैसे पत्थर की हों और मूंछें, उफ ! कितनी डरावनी हैं।"

मनोहर हंस दिया—"मुझे तो उन की मूंछें बड़ी अच्छी लगती हैं। सोचता हूं क्यों न खुद भी ऐसी ही रख लूं।"

राका के होठों के दोनों सिरे सूत-भर फैल कर, सिकुड़ गये, जैसे वह कह रही हो—"अब मैं ऐसी बातों से नहीं चिढ़ती। मगर, उसकी इच्छा हो रही थी कि थोड़ी देर के लिए वह कहीं अकेले में बैठे।

शाम को मनोहर ठाकुर साहिब के कमरे की तरफ चला गया। खिड़की बन्द करके राका बिस्तर पर लेट गई। उन्हें घर से आए हुए दो महीने हो गये थे। राका सोचती—उस छोटे से शहर में, उनके इस तरह चले आने पर कितना थलका मचा होगा। कितनी बातें हुई होंगी। उसके सामने अपने घर वालों की चिंतित, लोक-लाज से झुलसी हुई आकृतियां खड़ी थीं। रिटायर्ड हैडकलर्क, पिता का रूखा-सूखा चेहरा, जिस पर लाख चिन्ताओं के घेरे। उससे बड़ी दो अविवाहित बहिनों के बुझे-बुझे चेहरे और तीन मासूम ममता हीन छोटे भाई।

राका ने मनोहर के प्रेम में इन सब से मुंह मोड़ लिया था। मनोहर का हाथ थाम कर उसने सब ओर से आंखें मूंद ली थीं। मनोहर प्राय: कहता "हम ऐसा क्यों न समझ लें कि हम दोनों का हमारे सिवा इस संसार में अपना कोई नहीं है।"

अब मनोहर की प्रत्येक संध्या ठाकुर साहिब के साथ कटती।

एक रात अकेली बैठी राका किसी पत्रिका के पन्ने उलट रही थी। मनोहर इतनी देर तक पहले तो ठाकुर साहिब के पास नहीं ठहरता था। राका ने घड़ी देखी, नौ बजने को थे। सोने के दांत वाला बैरा दो बार खाना लाने को पूछ गया था। राका ने उसे ठाकुर साहिब के कमरे से मनोहर को बुला लाने को कहा था। मगर वह लौट के नहीं आया। राका स्वयं उठ कर, ठाकुर साहिब के कमरे की ओर बढ़ चली।

ठाकुर साहिब के कमरे का दरवाजा भीतर से बन्द था। खिड़की

के शीशे में से झांक कर राका ने देखा—ठाकुर साहिब पलंग पर बैठे थे। उनके सामने कुर्सी पर टांगें फैलाए मनोहर बैठा था। दोनों के बीच तिपाई पर बोतल और गिलास टिके थे।

राका के सीने पर जैसे किसी ने उंगली रख दी। निढाल-सी वह लौट आई।

ठाकुर साहिब ने कहा—"तुम लोगों की प्रेम-कहानी सुन कर, मुझे लगा यह तुम्हारी ही नहीं मेरी अपनी भी कहानी है। मैंने और मनोरमा ने भी इसी तरह घर मे भाग कर विवाह किया था।"

'हमारे लिए यह बड़ी खुशी की बात है।' मनोहर ने मासूम बच्चे की तरह खुश होकर कहा। वैसे भी वह ठाकुर साहिब के सामने बच्चा ही लग रहा था।

यह सुन कर ठाकुर साहिब का मुंह कस गया—"मनोहर! सच्ची बात यह है कि यह मेरे लिए कोई खुशी की बात नहीं है। इस खुशी के दागों को मेरे खून के आंसू भी न धो सके। व्याह के बाद हमारे तीन संतानें हुईं—"दो लड़कियां और एक लड़का।" ठाकुर साहिब की आंखें सजल हो उठीं। आंखें पोंछ कर उन्होंने फिर कहना शुरू किया—"जवान होने पर दोनों लड़कियां, वैसे ही भाग गईं, जैसे एक दिन उनकी मां मेरे साथ भाग कर आई थी।······और मेरा बेटा भी किसी लड़की के साथ ···।" ठाकुर साहिब का कण्ठ भर आया कुछ क्षण वे आंखें मूंदे रहे। फिर धीरे-धीरे आंखें उठाकर उन्होंने कहा—"मनोहर बेटा! अब तो शराब पी कर मौत का इंतज़ार कर रहा हूं।"

मनोहर को जैसे किसी ने दूर नीचे फेंक दिया था। उसने धीरे से पूछा— "इस सारी मुसीबत का कारण क्या आप अपने प्रेम विवाह को ही मानते हैं ?"

ठाकुर साहिब उस समय गिलासों में शराब उल्ट रहे थे। 'घट'-'घट' करके शराब गिलासों में गिर रही थी। कुछ वैसी ही आवाज़ में ठाकुर साहिब ने हंसते हुए कहा—"तुम अभी इसे नहीं समझ सकते। परमात्मा न करे······।" गिलास मनोहर को थमाते हुए उन्होंने कहा—"आदमी चाहे कितने आधुनिक-विचारों का हो, अपनी संतान को यों बरबाद होते नहीं देख सकता। लेकिन, संतान पर माता-पिता के संस्कारों का प्रभाव तो रहेगा ही ···।"

दोनों हाथों में गिलास थामे, मनोहर सामने शून्य में घूर रहा था।

ठाकुर साहिब कह रहे थे— "गाड़ी पर बिठा कर किसी लड़की को भगा लाने से घोड़े पर बिठा कर लाना अधिक जान-जोखम का काम है। मानते हो ?······मोटर-गाड़ी मनोरमा के गांव तक जाती नहीं थी। घोड़ा अपने पास नहीं था।····· मनोरमा से सब बातें पक्की करके मैं अपने एक दोस्त से घोड़ा मांगने को गया। सारी बात सुन कर दोस्त बोले— "घोड़ा हाज़िर है। जब चाहो ले जाओ मगर घोड़े में एक अवगुण है। रास्ते में यहां कहीं नदी-नाला होगा, घोड़ा वहीं बैठ जाएगा।"

मैंने इस का कारण पूछा।

उन्होंने बताया—"घोड़ी के मर जाने के कारण बचपन में इस घोड़े को भैंस का दूध पिला कर पालना पड़ा था। बस सब उसी की

करामात है। अब तन से यह घोड़ा है और मन से भैंस। आखिर दूध ने अपना असर तो दिखाना था……।" उनकी बात पर मन नहीं जमा। सोचा, टालने के लिए ऐसा कह रहे हैं। मैंने कहा "यार! हमारे रास्ते में कोई नाला-वाला नहीं है। चलो, तुम घोड़ा खोलो।"

' घोड़ा मिल गया। मगर, वही बात हुई जिस का डर था। ऐन मौका पर घोड़ा एक पानी के नाला के ठीक बीच, पट से बैठ गया। लाख यत्न किये पर वह टस से मस न हुआ। मनोरमा बुरी तरह घबरा गई। उसके भाई-बंद हमारे पीछे दौड़े आ रहे थे……।"

"फिर…फिर क्या हुआ ?" मनोहर ने अपने सिर को एक झटका देते हुए पूछा।

खाली गिलास को 'ठक' से तिपाई पर रख कर ठाकुर साहिब बोले—"इतने में वे लोग भी वहां आ पहुँचे। मैंने फौरन अपनी पिस्तौल निकाल मनोरमा के सामने तानते हुए उनसे कहा—यदि किसी ने एक भी पग आगे बढ़ाया, तो गोली लड़की के आर-पार हो जाएगी।"

मनोरमा के पिता, बूढ़े ठाकुर ने तड़प कर कहा—"नहीं, नहीं ऐसा अनर्थ न करना…। जा पापी लड़की तेरी हुई।……भगवान तुझे भी बेटी का बाप बनाए।"

मनोहर कुर्सी पर पत्थर हो चुका था। उसे एक और जाम देते हुए ठाकुर साहिब ने कहा—"बेटा! जवानी का नशा आंखें खुलने नहीं देता और जब नशा काफूर होता है, तो आंखें खुलने की बजाए पत्थरा जाती हैं।" एक हाथ ऊंचा उठा कर ठाकुर साहिब ने कहा—

"यदि भैंस के दूध का असर घोड़े पर हो सकता है······। संतान तो मां के खून से पलती है।"

मनोहर के हृदय को जैसे किसी ने मुट्ठी में भींच दिया था। वह हड़बड़ा कर खड़ा हो गया—"बस कीजिए ठाकुर साहिब, बस कीजिए। आप ने मेरी आंखें खोल दीं।······राका घर से भाग सकती है। मगर, मेरी बेटी कभी ऐसा नहीं करेगी। मैं अपना बुढ़ापा पश्चाताप की आग में नहीं जलाऊंगा······कभी नहीं······कभी नहीं······।"

पागलों की भान्ति बड़बड़ाता वह कमरे से बाहिर निकल गया था।

"क्रींग" की आवाज़ से दाईं ओर के दरवाज़े का एक पट खुला। एक मंझे हुए अभिनेता की भान्ति ठाकुर साहिब ने दरवाज़े पर खड़े मैनेजर पर दृष्टि डाली।

मैनेजर मुस्करा पड़ा—पाल ! मुबारिक हो भई, ठाकुर साहिब का रोल खूब निभाया है। छोकरा उम्र भर याद रखेगा।"

"बेचारे ने दम भी नहीं मारा। आज ही टिकट कटा गया समझो······और कल मैना अपने पिंजरे में होगी···।"

●

प्रातः

राका के हाथों में एक कागज़ कांप रहा था। कागज़ की तरह ही उसकी अपनी देह भी कांप रही थी। कागज़ पर लिखी अंतिम पंक्तियों पर राका की आंखें गड़ी थीं। "······हमारा यह प्रेम जंगली

पशुओं की भूख है। इसका अन्त कभी सुखद नहीं हो सकता।...
...जो हुआ, समझो हमारे दुर्भाग्य से हुआ।......मैं जा रहा हूं।
कहां ? नहीं जानता"......मनोहर।

किसी विशेष उपमा द्वारा राका की मनः स्थिति का वर्णन करना सहज नहीं। आंखों के सामने, कागज़ पर लिखे हुए शब्द उसे किसी शिलालेख की तरह लग रहे थे। उसका अपना शरीर भी शिला की भान्ति निर्जीव-सा हो गया था। हृदय की जगह धू-धू करके अग्नि कुण्ड-सा जल रहा था।

खिड़की के बाहिर, गीद्ध-से मैनेजर और पाल खड़े थे। शायद मुस्करा रहे हों। राका को केवल उनकी धुंधली आकृतियां दिखाई दे रहीं थीं। सोने के दांत वाला बैरा दरवाज़े के पास खड़ा न जाने क्या कह रहा था।

राका की चारों ओर जैसे कमरा घूम रहा था। ठीक वैसे ही जैसे बचपन में दोनों बांहें पसारे जब वह भंवर घूमा करती थी,...और लगता था सब कुछ घूम रहा है, डगमगा रहा है......।

रास्ते में

मैं लौट रहा था। अभी कुछ क्षण पहले इसी सड़क से वह बस दनदनाती हुई गुजरी थी। जिस पर मैं छः महीने से कण्डेक्टर था। सहसा, बात का बतंगड़ बना और मेरी नोकरी का पहिया—जो प्रायः पंक्चर ही रहता है, एक बार फिर पंक्चर हो गया, और बस श्रीनगर की ओर चली गई। पतझड़ के पीले पत्तों का रेला देर तक बस के पीछे भागता रहा। मैं धीरे-धीरे पग बढ़ाते हुए एक पुलिया पर आकर बैठ गया। बेकारी के बावजूद मन में कहीं भी कोई खीझ नहीं थी। जैसे मैं अपनी पुरानी जानी-पहचानी दुनिया में एक बार फिर लौट आया था। यहां भूख तो थी मगर खुला आकाश था, फैली हुई धूप थी।

अचानक, बीन के स्वर गूंज उठे। मैंने देखा सामने की पगडण्डी से एक बारात चली आ रही थी। एक समय था जब बारात बैंड सुन कर दिल खुशी से नाच उठता था। अब जब कि मैं तेईस वर्ष का हूं यह आवाज़ सुन कर कुछ अजब-सा लगता है। अपने आप मैं जाने क्यों इक शर्म-सी अनुभव होती है। एक झिझक-जैसे मेरी अपनी बारात हो। बिना किसी उत्साह के मैं उसी ओर देखता हूं। बीन बजाने वाले के फूले हुए गाल। बारातियों की गहरे रंगों में रंगी हुई अधिकतर—तुर्रे वाली पगड़ियां। पसीने से जिन के दाग

उनके माथे से झलक रहे थे। कोरे लठ्ठे के पाजामें, जिन की चूड़ियों पर बारीक धूल की परतें जमी हुई थीं। तेल से लैस देसी चाम की नोकदार जूतियों की चरीं-चरीं। एक मरियल-सी घोड़ी पर तन कर बैठा हुआ दूल्हा। पुलिया के साथ मिलती खुली जगह पर वे आकर रुक गये। शायद बस के इन्तज़ार में। एक ओर कम्बल बिछा कर चौकड़ी जम गई। देशी शराब की बोतलें—कारक की जगह जिन को मक्की के गुदों से बन्द किया हुआ था—खुल गईं। घरों में ही कशीद की हुई घटिया किस्म की शराब की खट्टी-सी गन्ध फैलने लगी। दूल्हा ने दूध पीते शिशु की भान्ति दोनों हाथों से पकड़ कर गिलास होठों से लगाया। कुछ क्षण पहले सेहरे की लड़ियों से ढके जिस चेहरे की कल्पना की थी—अब वहां सेहरे की लड़ियां नहीं सिर्फ सख्त चेहरा था, जिस पर गहरे चिचक के दाग थे—एक आंख खुली की खुली शायद कांच की है। मुंह बन्द होने पर भी सोने के दांत का आगे बढ़ा हुआ सिरा चमक रहा है। इन सब से अलग-अलग एक ओर दो बूढ़े असहाय भाव से फुसफुसा रहे थे। उनके चेहरों पर अनिश्चितता की छाप स्पष्ट दिखाई दे रही थी जैसे वे कोई ज़रूरी वस्तु कहीं रास्ते में ही खो आए हों।

बीन वाजा फिर बज उठा। पीने पिलाने वाली चौकड़ी में से एक युवक जिस के बाल फौजी ढंग से कटे हुए थे बीन के स्वर पर झूम-झूम कर नाचने लगा। अन्य बैठे हुए बाराती तालियां पीट रहे थे। युवक उतनी देर तक नाचता ही रहा जब तक बीन बजाने वाले में दम-खम रहा।

एक बाराती जिसे नशा कुछ अधिक चढ़ा हुआ था, हाथ नचा कर

जोर-जोर से कह रहा था— पक्की बात है, सोलह आने ठीक, जो खुद बदशकल है उसे पत्नी हसीन मिलती है। दूल्हे की ओर इशारा करके उसने कहा—"पट्ठे की होने वाली बीबी हुस्नपरी है। मैंने अपनी आंखों से उसे देखा हुआ है। आखिर मेरी ससुराल भी अखनूर में ही हैं।"

मैंने सोचा दूल्हे को इस बात पर जरूर गुस्सा आएगा और शायद कुछ झगड़ा भी हो। मगर कुछ भी नहीं हुआ, सिर्फ बीन वाले की ओर एक रुपये का नोट फेंक कर दूल्हा खुद उसी तरह झूम-झूम के नाचने लगा। जैसे बीड़ियों की मशहूरी करने वाले लौण्डे नाचते हैं—मेरे दिल ने पुकारा आजा, मेरे दिन के सहारे आजा।

एक हल्की-सी सरसराहट हुई। मैंने देखा वे दोनों बूढ़े अनिश्चित्-सी मुद्रा में मेरे पीछे खड़े थे। एक ने आगे बढ़ कर मेरे कन्धे पर हाथ रख दिया—क्या काम करते हो ?

"वेकार हूं।"

कुछ काम करोगे ?

मैंने अपने सिर को हल्का-सा झटका दिया—'हां'।

"अखनूर तक हमारे साथ जाना होगा, बढ़िया खाना पीना और पहनना······।"

मैंने धीरे से उसका हाथ अपने कंधे से हटा दिया—मुझे क्या करना होगा ?

"चुपचाप आराम से वैठना।" बूढ़े ने शब्द 'चुपचाप' पर अधिक ज़ोर दिया।

"मैंने अपनी उम्र के तेईस वर्ष चुपचाप ही बिताए हैं।"

"हमें सिर्फ तीन दिन ही चाहिए, इसके लिए तीस रुपये हम अलग से देंगे। मगर तुम्हें अन्त तक चुप ही रहना होगा।"

थोड़ी देर पश्चात् दूल्हे के चमक-दमक वाले कपड़े मेरे तन पर थे। वही खट्टी बू वाली शराब का एक गिलास मुझे दिया गया—"नहीं, मैं नहीं पीता हूँ।"

"नहीं, पिओ! फौजी ढंग से कटे बालों वाले युवक ने मेरा हाथ दबाते हुए कहा—"दूल्हा बन कर ना नहीं करते।"

मैंने कहा—नकली दूल्हे पर आप की यह शर्त लागू नहीं होती।

'गिलास असली दूल्हे ने दोनों हाथों से थाम लिया।" उस की अधमुंदी आंखें एक बार पूरी खुल गई। एक आंख कांच की ही थी।

तीसरे दिन हम बस में लौट रहे थे। बारातियों की बातें और हंसी का मिल-जुला स्वर बह रहा था। आगे की एक सीट पर मैं और दूल्हन दबे-सिकुड़े बैठे हुए थे। हमारे पीछे वाली सीट पर असली दूल्हा था। मुझे लग रहा था मैं बस पर नहीं एक तेज घूमते लट्टू पर खड़ा हूँ। एक बोझ मेरी देह पर बढ़ते ही जा रहा था। चढ़ाई में, इंजन की गूंज किसी घायल बाघ की तरह निकल रही थी।

हम दोनों सिकुड़े सिमटे बैठे थे। हमारे बीच की खाली सीट पर असली दूल्हे की नजरें बिछी हुई थीं। कभी झटके से जब हमारे शरीर एक दूसरे को छू जाते तभी पिछली सीट से जोर की खंखार सुनाई देती। मैं सम्भल कर बैठ जाता। एक बार, जब नींद की झपकी में दूल्हन का सिर मेरे कन्धे पर झुक आया तो पिछली सीट से

लगातार खंखार आरम्भ हो गई जैसे कोई चीज गले में जाकर अटक गई हो। मैंने धीरे से अपना कन्धा सरका लिया। दूल्हन का सिर मेरे कन्धे से फिसलता हुआ बगल तक आ गया। रात के जागरण के कारण वह बे-सुध सोई हुई थी, मैं थोड़ा-सा हिलता हूं, और कुछ पीछे की ओर घिसट आता हूँ। यह क्या मेरी देह है, जो इस तरह कांप रही है। कांपती देह और डूबता दिल। क्या यह मैं ही हूं ? मैं थोड़ा मुड़ कर देखता हूँ, बोखलाहट में झपकती एक आंख। चमकते सोने के दांत का एक सिरा और मुझे सहसा विश्वास नहीं होता कि असली दूल्हा यही है। मेरी बगल में गठरी-सी बनी अबोध लड़की इसी की पत्नी है। खट्टी शराब की बू से गड़बड़ हुए बोल—"पठ्ठे, की होने वाली बीवी हुस्नपरी है।" मुझे सहसा याद हो आते हैं। एक नई तरह का दर्द--जो मुझे पहली बार अनुभव हुआ- एक विकृत बोझ जो मेरे इर्द-गिर्द लिपटता ही चला जा रहा है।

मोड़ पर अचानक एक फौजी ट्रक आ जाने से ड्राईवर ने एक दम झटके के साथ ब्रेक लगा दी। सभी अपनी सीट पर एक झटके से झूल गए। नई दूल्हन भी जग गई और जल्दी में घूंघट खींचने लगी। इसी अफरा-तफरी में उसके अंगूठे से आरसी निकल कर नीचे जा गिरी। मैंने आरसी को उठा कर हाथ उसके सामने कर दिया। झिझकते हुए उसने अपना हाथ बाहिर निकाला और आरसी ले ली। हम दोनों के बीच सिर्फ हमारी नज़र ही थी। तभी सुनाई दी वही खंखार। अब वह मेरे लिए अर्थ हीन हो गई थी—बस के हार्न की तरह।

सूर्य डूबने पर वधु ने गृह प्रवेश किया। मेरे बदन से सुनहरी अचकन और अन्य कपड़े तब तक उत्तर चुके थे, उसी बूढ़े ने मेरी ओर

बड़ी कृतज्ञता-भरी दृष्टि से देखते हुए दस रुपये के तीन नोट बढ़ा दिए। मैंने अपनी आंखें मोड़ लीं। बूढ़ा ताश के पत्तों की तरह नोट हाथ में लिए कुछ क्षण खड़ा रहा। फिर उसने अपना हाथ मेरे कन्धे पर रख दिया, हल्का और कमजोर हाथ—"यह रख लो।"

"नहीं, मुझे मजदूरी मिल चुकी है।

बूढ़े ने नोट अपनी जेब में ठोंसते हुए कहा—"रात यहीं ठहरो, सुबह चले जाना।"......बूढ़े ने आगे पीछे देख कर कहा—"इस बात का किसी से ज़िक्र न करना, समझ गये न?" इतना कह कर वह चला गया।

एक बार फिर वही खट्टी शराब की बू आंगन में फैल गई। ऐसा लगता था जैसे वे शराब पी नहीं रहे, उस का छिड़काव कर रहे हैं। मैं एक अनावश्यक पात्र की भान्ति एक कोने में बैठा हुआ था।

नशे में, असली दूल्हा लड़खड़ाता हुआ एक स्त्री से कह रहा था—भाभी, तेरे पैर धो-धोकर पीऊंगा। जन्म भर तेरे नाम के मनके जपूंगा। देख, मुझ गरीब पर तरस खा। तूने अभी उसे देखा नहीं, वह साला तारा, कह रहा था कि मेरी होने वाली... होने वाली क्या अब तो हो भी गई......मेरी पत्नी हुस्नपरी है। मैंने हुस्न देखा है मगर हुस्नपरी नहीं देखी। भाभी, आज दिखला दो न कैसी होती है हुस्नपरी .....तेरी सौगन्ध तेरे पैर धो-धोकर पीऊंगा।

मुंह में चादर का पल्लू ठोंस कर वह हंस पड़ी—"नहीं मेरी चांद सी देवरानी को नज़र लग जाएगी।"

भाभी, मेरी एक आंख कांच की है। दूसरी मैं तेरी कसम फोड़

दूंगा। सदा के लिए सूरदास हो जाऊंगा। भाभी, मैं गले से घड़ा बांध कर डूब जाऊंगा।

"अच्छा सोचेंगे"—धीरे से कह कर और जोर से हंस कर वे इठलाती हुई चली गई। दोनों हाथों में गिलास थामे वह खड़ा, उसे जाते हुए देखता रहा।

मैं वैसे ही एक कोने में बैठा रहा। कुछ भी सोच सकने की सामर्थ्य मुझ में नहीं थी। मैं जैसे, मैं न था।

सारा घर सो गया, सिवाए एक कमरे के, वह कमरा जाग रह था। वह कमरा रो रहा था।

"नहीं नहीं, तुम कौन हो ?"

अट्टहास से कमरा कांप उठा—"मैं कौन हूं ? इतना भी नहीं जानती। मुझे बिल्कुल नहीं पहचानती।"

"नहीं, तुम चले जाओ, भगवान के लिए।"

"वह साला, तारा कहता था—ठीक ही कहता था। मगर यह तुम क्या नखरे करने लगी। तुम क्या जानो, भाभी की कितनी खुशामदें की हैं ..... ।"

"नहीं नहीं, यह धोखा है, कपट है, तुम वह नहीं हो।"

कहते-कहते वह सिसक उठी।

प्रातः मैं उसी पुलिया पर बैठा था—काश, उस दिन सिर्फ एक दिन के लिए मेरी नौकरी का पहिया पंक्चर न हुआ होता। रात की ये बातें सपना होतीं, काश, रात को मुझे नींद आ गई होती... ।

एक फूल की मौत

सब उसे फीन्कू कह कर पुकारते परन्तु वह हमेशा अपना नाम फकीर चन्द ही बताता और यही लिखता। वह बहुत ही चुपचाप रहने वाला और शर्मीले स्वभाव का लड़का था।

मैं पहले ही दिन उन की श्रेणी में गया था। लड़के अपनी-अपनी जगह पर खड़े होकर अपने नाम बताने लगे।

—"धर्म चन्द।"

—"रूमाल चन्द।"

—"गुलाब चन्द।"

—"फकीर चन्द श्रेणी पांचवीं।"

—"शाबाश बैठ जाओ।"

सभी बैठ गये।

"फकीर चन्द! तुम ज़रा इधर आना।"

वह आकर मेरी दाहिनी ओर खड़ा हो गया—फकीर चन्द, तुम्हारे कपड़े बहुत मैले हैं।"

"जी, आज सुबह ही धुले हुए पहने थे।"

"आज सुबह ! किस के साथ धोए थे ?"

"जी, सज्जी के साथ।"

ठीक ही, कपड़े मैले नहीं थे। सज्जी के साथ धोने के कारण नीले-जैसे दिखाई दे रहे थे और फिर वह अन्धेरे कोने में खड़ा था—मगर तुम नंगे पांव आए हो, स्कूल हमेशा जूता पहन कर आया करो।

—"जी, जूता बड़े हो कर पहनूंगा।"

मेरी आदत है कि पढ़ाने से पहले कुछ देर बच्चों से बात-चीत ज़रूर करता हूं और उसी बात के सिरे को पाठ से जोड़ कर पढ़ाता हूं।

"आज सुबह तुम लोगों ने क्या-क्या खाया था ?"

"निमक के साथ आधी मक्की की रोटी।"

"रात का बासी भात।"

"कुछ भी नहीं।"

"सिर्फ साग, आज हमारे घर आटा नहीं था।

"फकीर चन्द ! तुम ने क्या खाया था है ?"

"वन्जी का भात, निमक और पानी।"

"शाबाश, भई और किसी ने भी पानी का नाम ही नहीं लिया। पानी भी हमारी बहुत ज़रूरी गिज़ा है। क्यों है या नहीं ?"

आज के पाठ के लिए अब वे तैयार थे।

"एक मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए प्रति-दिन दूध, फल, माखन,

पनीर, अण्डे और मछली खाना जरूरी है। यह एक सम्पूर्ण भोजन है।"

आधी-आधी मक्की की रोटी या सिर्फ साग खाकर आए हुए पीले कमज़ोर लड़के हैरान होकर सुन रहे थे। कुछ सोचते भी होंगे, मगर मेरा काम केवल पढ़ाना है और उनका पढ़ना-सुनना और फिर रट कर याद कर लेना। इस से अधिक कुछ भी नहीं।

दूसरे दिन वे सबक सुना रहे थे। 'स्वस्थ रहने के लिए हमें कौन-सी गिज़ा खाना जरूरी है?"

हवा में बांसों की तरह सूखे और कमज़ोर हाथ लहराने लगे। कुछ इतनी ज़ोर-ज़ोर से हिल रहे थे कि जैसे मुझे ही प्रश्न कर रहे हों—भला बुझो तो कितनी उंगलियां हैं?

मैं फकीर चन्द की ओर उंगली उठाता हूं।

"हमें सेहत मन्द रहने के लिए प्रति दिन दूध, फल, अण्डे, पनीर .... "

फकीरू फटाफट कहे जा रहा था।

"मास्टर जी, इतना कुछ रोज खाने पर आदमी फट न जाए?"

एक लड़के ने थूक निगलते हुए कहा।

फकीरू ने उसे समझाते हुए कहा—"भई, इन्सान नहीं, अलबत्ता ये सब चीजें सा'ब लोग खाते हैं।"

इस श्रेणी के सारे ही लड़के पढ़ने में तेज थे मगर फकीरू उन सब से मेधावी था। वह तख्ती नहीं लिखता वरन् कसीदा काढ़ता था।

शेष छात्र अभी प्रश्न ही लिख रहे होते वह उत्तर भी लिख लेता। शब्दों के अर्थ और कविताओं के भावार्थ सुनाता तो मुझे लगता वह नहीं मैं स्वयं बोल रहा हूं। उस की लिखाई में अशुद्धि निकालने का मेरा चाव कभी पूरा नहीं हुआ। उसने रेल कभी नहीं देखी थी मगर रेल का आविष्कार किस ने कब किया और हमारे देश की रेलें कहां-कहां घूमती हैं—उसे सब मालूम था। उसने कोई शहर नहीं देखा था मगर लद्दाख से कलकत्ता तक, बीच में कौन-कौन शहर पड़ते हैं वह सब जानता था। भरपेट रोटी बेशक उसने नहीं खाई थी परन्तु सम्पूर्ण भोजन से वह भली भान्ति परिचित था। उसके बाप को मांगने पर दस रुपये का उधार नहीं मिल सकता था किन्तु वह कठिन से कठिन अरबों-खरबों का हिसाब अपनी उंगलियों पर निकाल सकता था।

एक बार कविता पढ़ाते हुए मैंने तुकबन्दी के विषय में बात की। दूसरे दिन वह अच्छी खासी तुकबन्दी कर लाया। अब जब कभी स्कूल में पहेलियों की प्रतियोगिता होती, तो यह तुकबन्दी हमेशा उसे सफल होने में सहायता देती। एक दिन उसने यह पहेली कही—

ऐ ओ मनुक्ख, सघेरदा खोते,
दुएंगी तारदा, आपूं खंदा गोते।

(वह है तो मनुष्य परन्तु गधों को सिधाता है दूसरों को पार उतारता है और स्वयं गोते खाता है)।

कोई भी लड़का इस पहेली को न बूझ सका। फकीरू को इस पहेली के बदले देहली शहर तक मिल रहा था मगर उसने कहा कि उसे स्वयं भी इस का उत्तर नहीं आता।

दूसरे दिन मैंने उसे पहेली के विषय में पूछा, मुझे उमीद थी कि पहेली उसने खुद ही बनाई हुई थी। उसने हिचकिचाते हुए उत्तर दिया—"आप हैं मास्टर जी।"

"मैं !" मैंने एक जोर का ठहाका लगाते हुए पूछा—"भई, तुमने कैसे जाना कि हम गोते खाते हैं ?"

"आप एक दिन खुद ही कह रहे थे कि हम लड़कों में से कोई अफसर, लीडर और मन्त्री बनेगा और जब मैंने पूछा था कि आप अधिक पढ़े लिखें हैं, तो आप क्या बनेंगे ? आपने कहा था—हम मास्टर हैं और मास्टर ही रहेंगे ?

और फिर एक दिन मैंने लड़कों से पूछा कि तुम बड़े हो कर क्या बनोगे ?

"पटवारी।"

"मैं पुलिस का सिपाही।"

"सिपाही से थानेदार बड़ा होता है, मैं थानेदार।"

"जंगलात का गार्ड।"

"मैं सरपंच।"

"मैं तहसीलदार।"

"मैं लीडर।"

फकीरू की बारी आई तो उसने कहा—"मैं कवि बनूंगा।"

पटवारी बनने वाले लड़के ने पूछा—"मास्टर जी, कवि बड़ा

होता है या पटवारी ?" और मैं सोच रहा था कि किसी भी लड़के ने मास्टर बनने के लिए क्यों नहीं कहा ?

दूसरे दिन रविवार था। मैं धूप में लेटा कोई किताब पढ़ रहा था। सामने मैदान में गन्दे बरोज़े का गोदाम था। बरोज़े की बू चारों तरफ फैली हुई थी।

"ओ, क्यों कनस्तरों को उल्ल-पल्ट रहा है ?

बरोज़े की ढहलाई के ठेकेदार की आवाज़ आई—ठेकेदारी के साथ-साथ दुकानदारी भी करता है यह। सारा दिन दुकान पर बैठा, गोदाम की तरफ देखता रहता है, शोर डालता है, गालियां बकता है। शाम को गोदाम में जाकर कनस्तर गिनता, हिसाब लगाता और खुश होता।

"ओ, तुम्हें कह रहा हूँ, क्या उल्ट-पल्ट मचा रखी है, तुमने कनस्तर खरीदना है या उठाना है ?"

मैंने गोदाम की ओर देखा फकीरू कनस्तर उठा रहा था—"मास्टर जी नमस्ते।" मेरे नज़दीक से गुज़रते हुए उसने कहा—नगर जा रहा हूँ। आप का कोई सामान तो नहीं लाना है वहां से।"

"ओ, कनस्तर उठाकर जा रहे हो, पर्ची तुम्हारा बाप कटवाएगा"—ठेकेदार गर्जा।

फकीरू सहम गया—"ठेकेदार जी, क्या पर्ची भी काटनी होती है ?" "काटनी नहीं ?" ठेकेदार चीखा—"कहीं कोई टीन खुर्द-बुर्द हो जाए तो ? तुम सुसरे क्या पढ़ते हो, आज कल की पढ़ाई......" सहसा ठेकेदार को जैसे कुछ याद हो आया-- ओए, चार आने मिलेंगे।

"क्यों ठेकेदार जी, पांच ग्राने रेट है।" फकीरू ने कहा—"रेट ! कोई कंट्रोल है इस पर। तुम्हें चार ग्राने नहीं लेने हैं तो कनस्तर खोल दो।"

"ग्रच्छा, ठेकेदार जी, काटो पर्ची।"

मगर देखना कहीं टीन गिरा न देना। कनस्तर जितने तो तुम खुद हो। याद रखना सोलह रुपये का टीन है।"

दस ग्राने रेट पर ठेकेदार को ठेका मिला था। छः ग्राने तो वह बैठ कर सिर्फ गालियां निकालने के ले लेता था। फकीरू पीठ पर 'डल्क-डल्क' करता हुग्रा कनस्तर उठा कर चला गया। छः कोस टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता यदि कहीं ज़रा-सी भी ठोकर लग जाए तो हड्डी-पसली एक हो जाए।

शाम को, चराग जले फकीरू लौटा। मैं उस समय ठेकेदार की दुकान पर ही बैठा हुग्रा था।

—"दीजिए ठेकेदार जी पैसे।"

—"ठेकेदार क्यों चोर कहो चोर। तुम्हारी ग्रम्मा ग्राठ ग्राने का दो सेर निमक उधार ले गई। ग्राज ग्राठ महीने होने को ग्राए उसे बीमार पड़े हुए। हम भी तो सिर में मिट्टी डाले इन्तज़ार कर रहे हैं ग्रौर तुम डण्डा लेकर ग्रागए, दीजिए ठेकेदार जी पैसे। मास्टर जी, ये सुसरे क्या पढ़ते हैं ? चल जा ग्रागे निकल, चार ग्राने वसूल हुए ग्रौर चार ग्राने बाकी रहे।

"ठेकेदार जी" फकीरू की ग्रांखें भीग गईं थीं—"मैंने स्कूल में 'फण्ड' देना था।"

ठेकेदार को गुस्सा आ गया—"फण्ड हमारे सिर से निकालना है ? कौन सी खानदानी देख कर स्कूल में पढ़ते हो। सुसरो चार साल बाद भी बरोजा ही उठाना है तुम लोगों ने फिर इन्तजार कैसी ?"

फकीरू चला गया।

दूसरे दिन मैंने अपनी जेब से फकीरू का फण्ड दे दिया। इस घटना के चार-पांच दिन के पश्चात वह मेरे पास आया। वे कुछ परेशान-सा दिखाई दे रहा था।

"फकीरू तेरी मां का अब क्या हाल है ?"

"वही हाल है मास्टर जी।"

"छट्टी श्रेणी की किताबों की तुम चिन्ता मत करना वह मेरे जिम्मा रहीं।"

खू···खू···खू···उसे खांसी ने दबोच लिया। मुंह पर हाथ रख कर वह बाहिर चला गया, मैंने सोचा शायद थूकने गया होगा मगर फकीरू लौट कर नहीं आया।

दूसरे दिन स्कूल भी नहीं आया, तीसरे दिन भी नहीं, चौथे भी नहीं। पांचवें दिन फकीरू का बाप मुझे मिला मैंने उस से फकीरू के बारे में पूछा, बेकारी की भट्टी में झुलस कर उसकी जवानी बुढ़ापे में बदल चुकी थी, बोला—मास्टर जी, बड़े यत्न से कूप (यहां से बरोजा निकाला जाता है) लिया था। बड़ी कठिनाई से उधार लेकर रोटी का सहारा बन सका था। अभी पहली छील ही दी थी कि कूप को आग लग गई। कूप गया और अभी आगे क्या होगा, कौन झगड़ा

खड़ा होगा, परमात्मा जानें। घर में एक तोला पीतल भी नहीं रही। फकीरू की मां को बीमार पड़े हुए आठ महीने हो गये हैं। उसे अकेले छोड़ कर कहीं परदेस जाकर मजदूरी भी नहीं कर सकता, यहां कोई काम नहीं।......एक लड़का था......। कहीं आटा होता तो रोटी सेंक देता। अपनी मां की देख-भाल भी वही करता। खुद सज्जी से उस के कपड़े धोता, कहता—किताब में लिखा है बीमार को मैले कपड़े नहीं पहनाने चाहिएं। मास्टर जी, जब कूप जल गया तो मुझे दिलासा देता—बापू तुम चिन्ता न करो? मैंने पढ़ लिख कर बहुत बड़ा आदमी बनना है, तब हमारे सब दुःख मिट जायेंगे। फिर मौज ही मौज होगी।......मास्टर जी सब मौजें मर गईं। पांच दिन हुए, शाहूकार आया था। उस का उधार दिन रात बढ़ रहा था। वह कुछ लेने आया था, मगर घर में कुछ भी नहीं था बस बीमार औरत, मैं और फकीरू। शाह ने फकीरू को ही ले लिया। उसे एक नौकर की जरूरत थी......।"

मुझे लगा, मेरी आंखों के सामने धुन्ध ही धुन्ध है जिस में घिरा एक नन्हा फूल दम तोड़ रहा है।